केरल ज्योति

सितंबर 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List Sr. No.58

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

केरल हिंदी प्रचार सभा के कर्मचारी एवं छात्र-छात्रायें मिलकर
मनाये गये ओणम त्योहार के विविध दृश्य

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो.(डॉ). एन.रवींद्रनाथ
डॉ. के.एम. मालती
प्रो.(डॉ.) आर. जयचन्द्रन
प्रो.(डॉ). जयश्री.एस.आर

परामर्श मंडल

डॉ.तंकमणि अम्मा एस
डॉ.लता पी
डॉ. रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक/संपादकीय दायित्व

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी
श्रीकुमारन नायर एम
प्रो.रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 6 अंक: **सितंबर 2023**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संघटन के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ.सोमनाथ तथा उनके सहयोगी वैज्ञानिकों को अभिनंदन! **अधिवक्ता मधु.बी** 6

कमलेश्वर की कहानियों में बदलते पारिवारिक मूल्य - **डॉ. श्रीदेवी.एस** 7

साहित्य में पर्यावरण कहानी के विशेष सन्दर्भ में - **डॉ.ए.एस. सुमेष** 9

हिंदी गीत (कविता) **डॉ.जे.रामचन्द्रन नायर** 11

किन्नर विमर्श और समकालीन हिंदी कहानियाँ 'कथा और किन्नर' के विशेष संदर्भ में - **डॉ. अंबिली.टी** 12

दलित साहित्यः कुछ अंदरूनी अंतर्विरोध- **डॉ.सी. बालसुब्रह्मण्यन** 17

प्रकृति और स्त्री-स्वत्व को बचाने की जद्दोजहत करती मनु की कविताएँ **डॉ.धर्मेन्द्र प्रताप सिंह** 20

नई शिक्षा भाषा नीति और शिक्षण के बदलाव : विद्यालय और चुनौतियाँ **डॉ.सीमा चंद्रन** 25

एम.टी. के कथा साहित्य में स्त्री पात्र - **लेफ्टिनेंट डॉ.षबाना हबीब** 27

समकालीन महिला लेखन में नारी - **डॉ. जीना मेरी जोस** 30

नारी शोषण के आईने में 'संस्कार को नमस्कार' - **शिल्पा.एस.एल** 34

छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों में साक्षरता प्रतिरूप - **खेमचंद** 37

पर्यावरण असंतुलन : "जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के संदर्भ में **लक्ष्मी.के.एस** 41

विषय : सामाजिक बोध : समकालीन रचनाकार पंकज बिष्ट के 'उस चिड़िया का नाम' उपन्यास के संदर्भ में - **सरिगा.जे** 47

नव सांस्कृतिक परिदृश्य में 'कफ़न' और 'पट्टुकुप्पायम' कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन - **जिबिता.एम** 50

दूनी गाँठ की गठरी - **मूल : के.एल. पॉल**
अनुवाद : प्रो.डी.तंकप्पन नायर व अधिवक्ता मधु.बी. 53

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 57

मुखचित्र :भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संघटन (ISRO) के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ.सोमनाथ

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
सितंबर 2023

संपादकीय

हिंदी और भारतीय भाषायें

भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री वेंकटरामन ने 11-9-1986 को राजाजी साहित्य पुरस्कार समारोह कोलकत्ता में कहा था कि भारत की सामासिक संस्कृति के सभी घटकों के लिए माध्यम की भाषा हिंदी बन सके, इसके लिए सरकार को यह प्रयत्न करना चाहिए कि हिंदुस्तानी से तथा देश की अन्य भाषाओं से अभिव्यक्तियों को लेकर तथा उन्हें आत्मसात् करते हुए, मुख्य रूप से संस्कृत से तथा गौण रूप से अन्य भाषाओं के शब्दों को, जहाँ आवश्यकता हो लेकर, हिंदी भाषा अपने को समृद्ध करे। दूसरी भाषाओं के सरल शब्दों को लेकर अपने को समृद्ध करने से अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी आसानी से ग्राह्य होगी।

भारत की सभी भाषाओं की आत्मा एक ही है। ये भाषायें भारतीयता का समान संदेश देती रही हैं। भारत की सामासिक संस्कृति का केंद्र एक ही रहा है भले ही उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम अलग-अलग भाषायें रही हैं। भारत जैसे विशाल देश में भाषाओं की विभिन्नता होना स्वाभाविक ही है। लेकिन यह विभिन्नता उसकी मूलभूत एकता में कभी बाधक नहीं रही है। इसके भीतर अंतः सलिला होकर भारतीयता सतत् रूप से सदा प्रवाहित रही है। इस संदर्भ में 20 अप्रैल 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में 24 वें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गाँधीजी का यह कथन ध्यातव्य है : "हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है।

हिंदी हमारे स्वतंत्रता संग्राम की भाषा थी। इस कारण यह भाषा जनगण के मन की भाषा बन चुकी थी। इसलिए गाँधीजी ने कहा था कि भारत के दिल में हिंदी की धडकन है। छठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर अपने संदेश में तत्कालीन प्रधान मंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने ठीक ही कहा था: "भारत की सभी भाषायें, भारतमाता के आंगन की फुलवारी के समान है और संविधान द्वारा घोषित राजभाषा होने के नाते हिंदी के पुरोधाओ पर यह दायित्व है कि वे इस फुलवारी को भी खींचें तथा हिंदी को आज की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक वातावरण बनायें।"

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

चंद्रयान-3 के दौत्य की सफलता हासिल करने पर भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संघठन (इसरो) के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ.सोमनाथ तथा उनके सहयोगी सभी वैज्ञानिकों को केरल हिंदी प्रचार सभा का हार्दिक अभिनंदन!

अधिवक्ता मधु.बी

यह अभियान भारत का सुंदर सपना था। करोड़ों भारतीय जनों की मनोकामना को साकार बनानेवाले भारतीय वैज्ञानिकों की निरंतर साधना की जितनी ही प्रशंसा की जाय वह कम होगी। इसके पीछे भारत सरकार की प्रबल इच्छाशक्ति एवं भारत के प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी जी के दृढ़ संकल्प ने भी बडा योगदान किया है।

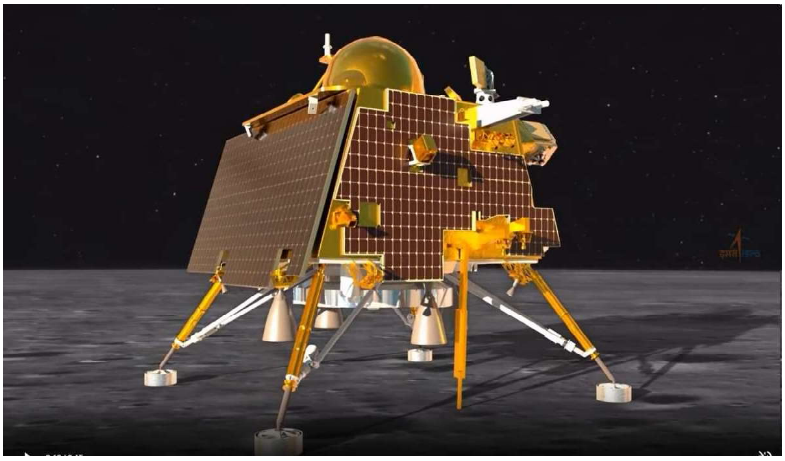

चंद्रयान- 3 की तेईस अगस्त को सेफ लैंडिंग की जो प्रतीक्षा थी वह सफल हो गई। यह भारत का महत्वाकाँक्षी मिशन था। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संघठन ने जब सूचना दी कि मिशन सफल हुआ है तो यह सभी भारतीयों के लिए रोमांचकारी अनुभव था। यह सभी केरलीयों के लिए गर्व की बात है कि केरल की अनेक महिला वैज्ञानिकों सहित कई वैज्ञानिकों ने इसके निर्माण में और सेफ लैंडिंग में बडा महत्वपूर्ण दायित्व निभाया है। यह भी उल्लेखनीय बात है कि इसरो के निदेशक डॉ. सोमनाथ ने कोल्लम में स्थित टी.के.एम. इंजिनीयरिंग कॉलेज में अपनी पढ़ाई की है। उपर्युक्त कई वैज्ञानिकों ने भी इंजिनीयरिंग की शिक्षा केरल में ही पायी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रागल्भ्य में एवं गुणवत्ता में हमारे देश की शैक्षिक संस्थायें यूरोप तथा अमेरिका अथवा अन्य विकसित राष्ट्रों से पीछे नहीं है। सवाल यह है कि हर सफलता के पीछे आत्मविश्वास, दृढसंकल्प, महत्वाकांक्षा और देश के प्रति निष्ठापूर्ण आस्था काम करती है। केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री के तौर पर मैं केरल हिंदी प्रचार सभा की ओर से इसरो और उसके पदाधिकारियों और वैज्ञानिकों को तहे दिल से अभिनंदन करता हूँ।

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

कमलेश्वर की कहानियों में बदलते पारिवारिक मूल्य

डॉ. श्रीदेवी.एस

लगभग अपनी अर्ध- शताब्दी तक की लंबी कथ यात्रा के दौरान कमलेश्वर जी ने हिंदी कथा जगत को बहुत कुछ दिया है। जिससे उनकी सामाजिक मंथन शक्ति का जीवन्त उदाहरण कहा जा सकता है। उनकी सभी कहानियां तीव्र जीवानुभूति तथा यथार्थ संवेदना पर आधारित है। कमलेश्वर ने ही स्वयं माना है कि कहानीकार का रास्ता जिंदगी से साहित्य की ओर जाता है। वे लिखते हैं 'लेखक का रास्ता जिंदगी से साहित्य की ओर जाता है। उनकी कहानियों में सामाजिक विसंगतियों, रूढियों, भय, मृत्यु से जुड़ी विडंबनाओं का सशक्त चित्रण किया गया है और उन पर तीखा व्यंग्य भी।'(1)

कमलेश्वर की दृष्टि में कहानी अनुभव है। उनकी कहानियों में गहन पीड़ा है। व्यापक अनुभूति है, गहरी दृष्टि है तथा संवेदन तीव्रता है। उनमें बदलते मूल्यों और बनते बिगड़ते संबंधों का चित्र प्रस्तुत होता है। कहा जा सकता है कि वह हमारी जिंदगी के प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत करते हैं। जिंदगी में आम आदमी को भय, शोषण, अपमान, दमन और छल सहना पड़ता है। निम्न स्तर के लोग सदा तकलीफों से ग्रस्त है। स्वयं आम आदमी की प्रतिनिधि कथाकार होने के नाते आम आदमी की पीड़ा कमलेश्वर की पीड़ा है। उनके ही शब्दों में 'हम स्वयं सामान्य आदमी है। उसी सामान्य जन में शामिल, हमारी संबद्धता उसी के प्रति हो सकती है, यह संबद्धता हर स्तर पर है, क्योंकि मामूली आदमी हर स्तर पर भय, छल, शोषण, अपमान, दमन से आहत है , मूर्त और अमूर्त तकलीफ से ग्रस्त है, उसी वर्ग से, इसी वर्ग के प्रति और इसी वर्ग से संबद्ध है।'(2)

डॉ. रामचंद्र तिवारी के शब्दों में 'नई कहानी के प्रति लेखकों मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर में कमलेश्वर ही ऐसे है जिन्होंने सामाजिक विसंगतियों, टूटते हुए जीवन, बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और व्यक्ति के अमानवीकरण को वाणी देने का प्रयास किया है।'(3)

कमलेश्वर को कस्बे का कलाकार माना गया है। कस्बाई संस्कृति और परिवर्तन का यथार्थ चित्रण जैसे कमलेश्वर की रचनाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। उनकी कहानियों में कस्बे के आदमियों के कई स्तर चित्रित है, जो जीवन के विभिन्न रूपों के प्रतीक है, पहले स्तर पर कस्बे के आदमी की मासूमियत का प्रतीक है, जिसकी वह हर कुर्बानी के साथ रक्षा करना चाहता है। दूसरे स्तर पर कस्बे के संबंधों की टूटन का प्रतीक आता है, जिसकी अभिव्यक्ति पीडित मानवता को लेकर हुई है। तीसरा स्तर संवेदना से जुड़ी हुई है। चौथे स्तर पर मानवीय संघर्षों को जीवित रखने की इच्छा झलकती है, इसके लिए कथाकार को कभी-कभी रोमांटिक बोध यथार्थोन्मुखी आदर्शवादिता का सहारा लेना पड़ता है। कस्बे के संबंधित उनकी सभी कहानियाँ जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म धड़कनों से स्पंदित है। डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार -' कस्बे की जिंदगी का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन लेखक की कहानियों में मिलता है। उसकी सजगता ने लेखक के उस अकृत्रिमभाव बोध को क्षति पहुंचाई है, जो उसकी कहानियों की एक मुख्य विशेषता रही है। '(4)

दूसरे दौर की कहानियाँ व्यक्ति को लेकर चलती हैं। शहर के आदमी के पास कई स्वप्न है, जीवन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता और अच्छी जिंदगी जीने की लालसा है। परंतु नगर की भीड़ में आत्मा

सत्ता खोकर अपनी सारी संवेदनाएँ टूट जाती है, भीड़ में वह भी एक अजनबी की तरह चलता रहता है। अंतिम दौर की कहानियों में महानगरीय सभ्यता और संस्कृति को निकटता से जान लेने का अवसर कहानीकार को प्राप्त होता है, फिर भी इन सब के पीछे आम आदमी को ही प्रमुखता दी गई है। इसलिए इनमें सामाजिक जीवन को ही कथ्य बनाया गया है। डॉ विजय मोहन सिंह के अनुसार 'कमलेश्वर की दृष्टि कहानी के पीछे जिंदगी, उसे बुननेवाले सामाजिक धागों की ओर ज्यादा रही है।[5]

परिवर्तित जीवन बोध का काफी प्रभाव मानवीय संबंधों की महत्वपूर्ण इकाई 'परिवार' को भी झेलना पड़ा। परिवार को मानवीय संबंधों की वह मंच है, जहां मानव के बहुविध संबंध दिखाई देते हैं, मानवीय संबंधों के अनेक कोण स्थापित होते हैं। किन्तु आधुनिक युग में परिवारों की पूर्ववत स्थिति कायम नहीं रह सकी। परिवार महत्व के प्रति देखने का दृष्टिकोण बदल गया। पहले जहां परिवार की विभिन्न इकाइयाँ परिवार की सुरक्षा के लिए स्वयं को समर्पित कर देती थी, वहाँ अब कोई भी इकाई परिवार में अपने आप को विलीन करने के लिए तैयार नहीं है। परिवार के सदस्य अपना स्वतंत्र व्यक्तित्त्व साबित करने की कोशिश में लगे हुए हैं। परिणामस्वरू प परिवार में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। यहां हमें यही देखना है कि परिवार में होने वाले परिवर्तन को कमलेश्वर की दृष्टिकोण किस संदर्भ में और किस स्तर पर पड़ता है। वैसे तो हर काल में मानवीय जीवन परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजरता ही है, किन्तु कोई युग अपने साथ बड़ी तीव्र परिवर्तन प्रक्रिया लाता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता जहाँ एक और परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी और सामाजिक परिवर्तन पारिवारिक संबंधों के परंपरा बद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था। कमलेश्वर की 'लहर लौट गयी', 'तीन दिन पहले की रात', 'देवा की मां','दुनिया बहुत बड़ी है' और 'दूसरे' आदि कहानियां बदलते पारिवारिक स्वरू प के संदर्भ में अलग-अलग कोणों को उदघाटित करती है। 'वह समय और साधन उनके नहीं हैं', दिवाकर बोला, ' अगर हर आदमी अकेला जीता होता तो क्या यह सुविधाएं उनके पास होती? हम आज भी जंगलों में जानवरों की तरह भड़कते होते। इन अतिरिक्तसुविधाओं के लिए सभी ने जाने-अनजाने हाथ बटाया है, यह उन्होंने पैदा की है, जो इनके लिए तरस रहे हैं। व्यक्ति इत्र छिड़ककर फूल सूँघता हुआ इन फटेहालों के बीच से निरपेक्ष होकर गुजर सकता है , आदमी नहीं। व्यक्ति सुरक्षा चाहता है, आदमी स्वतंत्रता चाहता है। सुरक्षा और स्वतंत्रता में बड़ा अंदर है। स्वतंत्रता एक का नहीं °ÉÉ´ÉcÉ + ÊvÉÉcÉ® ½è"[6] अर्थात कमलेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण पारिवारिक संस्था और स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ में उद्‌घाटित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कमलेश्वर (संपादक) , कथाकृत, पृ. 163.
2. कमलेश्वर (संपादक) 'समांतर', (भूमिका), पृ. 13.
3. डॉ.रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृ. 231.
4. डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी, समकालीन हिंदी साहित्य विविध परिदृश्य, पृ. 107.
5. विजय मोहन सिंह, आज की कहानी, पृ. 47.
6. कमलेश्वर, तीन दिन पहले की रात (समग्र कहानियाँ), पृ. 190.

सहायक प्राध्यापिका एवं विभागाध्यक्षा
सेंड जोसेफस कॉलेज, तिरुचिरापल्ली
तमिलनाडु - 620 002
ई मेल - sdtvpm@yahoo.com

साहित्य में पर्यावरण कहानी के विशेष सन्दर्भ में

डॉ .ए .एस सुमेष

समकालीन सामाजिक एवं साहित्यिक चर्चाओं के संदर्भ में सबसे विचारणीय विषय के रूप में पर्यावरण समस्या हमारे सामने प्रस्तुत है। पर्यावरण और मानव जीवन के विभिन्न पक्ष-विपक्षों के उपर आज बहस चलते रहते हैं। सामाजिक जीवन में पर्यावरण की चर्चा जितनी गहनता से हमारे सामने उपस्थित है साहित्य में भी उतनी ही गहनता से प्रस्तुत है। लोक साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य परिप्रेक्ष्य तक विस्तृत साहित्य संपदा में पर्यावरण का महत्व एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए किए गए कार्य कलापों, सृजनात्मक आंदोलनों पर विचार करने का प्रयास चल रहा है। यहाँ पारिस्थितिकी पर विचार करने के लिए कहानी की पृष्ठभूमि को स्वीकार किया गया है।

संस्कृति के विभिन्न संदर्भों में पर्यावरण का विशेष महत्व है। क्यों कि संस्कृति शब्द का बीजार्थ यह निकलता है 'जीवन की मिट्टी को जोतना और बोना'। अतः संस्कृति भी एक प्रकार की कार्षिक वृत्ति है, जिसमें परिमार्जन, परिवर्धन और संशोधन की प्रक्रिया अंतर्निहित है। कहने का मतलब यह है कि हर मनुष्य अपने पर्यावरण के भीतर ऐसे एक सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करता है, जो उसके सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का आधार है। अर्थात् संस्कृति एक सहज आत्माविष्कार है, उसी प्रकार पर्यावरण में भी आत्मनिष्ठता एवं सहजता अनिवार्य है।

अपनी आवश्यकता की परिधि आज हमारी सामाजिकता की परिधि है। यह विचार पर्यावरण के सन्दर्भ में भी सही है। अधिकांश लोगों का विचार यह है कि पर्यावरण हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए है। उनके लिए पर्यावरण केवल एक उपकरण मात्र है। उसका न तो आत्मा है, न अस्तित्व। इसलिए पर्यावरण पर होनेवाले अत्याचार पर हमें दुख दर्द का एहसास नहीं है। दुर्भाग्य की बात यह है कि आज यह एक विचारधारा का रूप धारण कर लिया है। इन बातों से यह स्पष्ट ज़ाहिर है कि एक विशाल एवं वैविध्यपूर्ण आत्मीय अभिविन्यास की ज़रूरत है। जीवन से संबन्धित एक समग्र संकल्प के रूप में पर्यावरण को समझना ज़रूरी है। मानव/प्रकृति/सभी जीव जाति की एकात्मकता से निर्मित एक व्यवस्था की परिकल्पना अनिवार्य है। लेकिन इसकी सफलता केवल तब संभव है जब हम विपणन की संस्कृति के मूल्यों को तोड़ने में सक्षम हो।

समकालीन संदर्भ में देखा जाए तो पता चलता है कि पर्यावरण या पारिस्थितिकी एक सशक्त साहित्यिक प्रतिरोध का माध्यम है। कविता में और उपन्यास में इसकी चर्चा विस्तृत एवं गहन मालूम पड़ता है। लेकिन कहानी के संदर्भ में पर्यावरण की चर्चा उतनी नहीं है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि कहानी में पर्यावरण या पारिस्थितिकी का चित्रण उपलब्ध नहीं है। लेकिन कहानी के संदर्भ में एक पुर्नपाठ की पद्वति को स्वीकारना ज़रूरी है। अन्य विधाओं की भांति कहानी में भी उपभोक्तावादी सामाजिक परिवेश, भूमंडलीकरण, निजीकरण, अपसांस्कृतिक परिवेश का चित्रण, पूंजीवादी सामाजिकता, उपनिवेशवादी मानसिकता, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास का चक्कर, शहरीकरण, नारीवाद आदि विभिन्न संदर्भों का उल्लेख हैं। लेकिन इन सभी को लेकर क्क पारिस्थितिक जीवन बोध का अध्ययन विस्तृत मात्रा में कहानी में उपलब्ध नहीं है। क्योंकि पर्यावरण को हम भौतिक जीवन से जितना जोड़ते हैं उतना भावात्मक जगत से जोड़ने को तैयार नहीं हुआ है। प्रेमचन्द की कहानी पूस की रात को हमने कृषक समस्या के रूप में, पूँजीवादी सामाजिक परिवेश में

देखा था। पंच परमेश्वर को हमने ग्रामांचल की कथा के रूप में स्वीकार किया था। आंचलिकता के संदर्भ में हमने इसका अध्ययन भी किया था । लेकिन आंचलिक पृष्ठभूमि में नहीं अपितु विस्तृत जैव केन्द्रित जीवन वृत्ति के संदर्भ में आज हमें उन सारी रचनाओं को देखने की आवश्यकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान में पर्यावरण का अपना एक अलग सृजनात्मक पृष्ठभूमि है जो तथाकथित आंचलिकता से बहुत मात्रा में भिन्न है।

समकालीन कहानी के संदर्भ में केवल एक कहानी का उदाहरण देना चाहूँगा। 'अमरूद का पेड़' यह ज्ञानरंजन की कहानी है। अपने आंगन के एक अमरूद के पेड़ की यादों से होकर नगर जीवन की यांत्रिकता से लौट आने पर उस पेड़ के इर्द गिर्द घटित होनेवाली घटनाओं के चित्रण तथा ग्राम जीवन की परिभाषा को उस पेड़ के साथ पुनः व्याख्यायित करने का प्रयास आदि बातें इस कहानी में है।

ज्ञानरंजन की कहानी 'अमरूद का पेड़' एक विशिष्ट समकालीन पारिस्थितिक कहानी है। गाँव में यही एक विश्वास था कि "पश्चिम की तरफ अगर मकान का मुखड़ा हो और सामने अमरूद का पेड़ तो राम राम बड़ा अशुभ होता है।" ग्राम जीवन की गँवारी भोले मानस को कहानीकार ने अमरूद के पेड़ के द्वारा व्यक्त किया है। अमरूद का पेड़ एक आत्म संबन्ध है, जो अपनी मिट्टी से लगाव एवं चाह का प्रतीक है। कहानीकार के शब्दों में कहे तो- "मुझे लगा कि हमारे घर के सामने का यह अमरूद हमारी ज़िन्दगी का एक घरेलू हिस्सेदार होता जा रहा है। घोष बाबू के माली ने माँ को बताया कि पहली फसल के फल तोड़कर फेंक देने से दूसरी बारी में फल खूब अच्छे आते हैं। अमरूद और नींबू के साथ यह बात खास लागू होती है। माँ ने विजय से कहकर अमरूद की पहली फसल बड़ी दिलचस्पी से पूरी बाढ के पहले ही तुड़वाकर फिकवा दी थी। यह बात आसानी से महसूस की जा सकती थी कि माँ में विराट मातृत्व है और वह भविष्य के लिए प्रतीक्षा कर सकती हैं, उसी तरह जैसे हर माँ अपनी संतान के लिए दीर्घ प्रतीक्षा किया करती है और फिर भी उसको अपना स्वप्न अधूरा लगता है। जो भी हो, मुझे प्रसन्नता हुई कि अपशकुनी विश्वास की जहरीली छाया हमारे कोमल मीठे अमरूद तरु पर नहीं पड़ी।"

मातृत्व की यही ममता एक जैव केन्द्रित जीवनानुभ है। जिसमें प्रकृति की सभी चीज़ें हमारी ज़िन्दगी के हिस्सेदार हैं। आगे कहानीकार ने हमारे सामने अमरूद को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनके अपने जीवन में बहुत कुछ आत्मीयता का संचालन एवं बौद्धिकता का पोषण इसी वृक्ष की छाया में संपन्न हुआ है। वे लिखते हैं- "किसी भी घटना या असकस्मिकता या एक संपूर्ण परिस्थिति को हम लोग अनहोनी नहीं मानते थे। जीवन में सब सहज है, सह संभव । अमरूद की छाया में बेंत की कुर्सियों पर बैठ चर्चाएँ कर करके हम तीन-चार भाई बहनों ने अपनी उम्र के फर्क को दोस्ताना हरकतों से भर दिया। प्रायः बैठकर, नए नए विषयों को कुरेदकर, कभी ताप और उग्रता के वशीभूत होकर भी बातचीत करना, तेज़ी से हम लोगों के मनोरंजन और दैनिक निर्वाह का एक अंग होता जा रहा था।"

मानवीय जीवनानुभवों को एक पेड़ के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास इस कहानी में हुआ है। हम सब की ज़िन्दगी में ऐसे एक पेड़ या एक पेड़ की छाया ज़रूर होगी जिसने हमारी आकांक्षाओं को रूप-रस गंध से पल्लवित किया हो। खुद एक संदर्भ में कहानीकार लिखते हैं कि 'नगर इलहाबाद की आत्मा में क्रांति' है। तनाव से ग्रसित स्थिति में ही सही यह समकालीन यथार्थ है। आदि से अंत तक अपनी पूरी जिन्दगी को उसके हर पल को, घरवालों के बीच होनेवाले संघर्षों को, माँ की ममता को, भाई-बहन के आत्म-संबन्ध को रचनाकार ने अमरूद के पेड़ के माध्यम से व्यक्त किया है । बस अमरूद एक कारक है जो संबन्धों को कभी जोड़ते हैं तो कभी तोड़ते हैं। मगर एक बात सच

है कि वह रचनाकार की ज़िन्दगी का अभिन्न अंग है। क्योंकि अमरूद ने जिंदगी को अलग ढंग से देखने का एक मार्ग दिखाया है जो जैव केंद्रित जरूर है चाहे खुद उसको अपना अस्तित्व खोना पड़ा हो।

नोम चोंस्की के अनुसार यदि आपकी प्रवृत्ति इस विचार के साथ है कि सच्चाई की कोई गुंजाइश नहीं है, तो सच्चाई के लिए कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है इस बात की आप गैरंटी दे रहे हैं। मत भूलिए कि चुनने का अधिकार हमारा है। वैज्ञानिक विकास के इस नये युग में जनतांत्रिक मानवीय व्यवस्था को बहुत कुछ करने को बाकी है। सामाजिक सक्रियतावाद के ज़रिए जनसाधारण का अधिकार हम प्राप्त कर सकते हैं। यह अधिकार सामाजिक प्राणी के रूप में प्राप्त करना चाहिए। एक उपभोक्ता के रूप में नहीं । पर्यावरण संरक्षण प्रक्रिया की सामाजिक/बौद्धिक चेतना की यही पृष्ठभूमि है।

सन्दर्भ

1. पर्यावरण परंपरा और - अपसंस्कृति - डॉ.गोविन्द चातक पृष्ठ 132 तेज प्रकाशन दिल्ली, 2000
2. ज्ञानरंजन की कहानी अमरूद का पेड़

सह आचार्य एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग , एम ई एस महाविद्यालय
इडुक्की-685553

कविता

हिंदी गीत

डॉ.जे.रामचंद्रन नायर

गंगा आरती सी हिंदी की जान वही भारती की पहचान ,
गरीयसी बोली अमर देव भाषा सब को प्यारा सनातन ,
संसार में बहुमत बोलते समझते प्यारी न्यारी हिंदी ,
संगीतमय गान समान गुनगुनाती रहती सुहानी भाषा हिंदी।

देवनागरी की असीम संवेदनशील तरल भावना हिंदी ,
देव सृष्टि वेदेतिहास उपनिषद की भाषा हिंदी मृदु वाणी ,
देवभूमि से निकलती अनवरत बहती रहती हमारी हिंदी ,
देश विदेशों के मानवमन को प्रेम सूत्र में बांधती हिंदी ।

सात्विक भावना के रहस्यमय क्षितिज से बहती सुर महिमा
सदा प्यार बरसाती घोषणा करती निज भाषा की कोमल गरिमा ,
स्वतंत्रता संग्राम , बलिदानियों के मूलस्थान में विराजती हिदी ,
स्वामित्व की भावना छोड़ अपनायी हिंदी भारत माँ की बिंदी।

भारत की एकता के धागे में पिरोया तिरंगा झंडा - राष्ट्र भाषा ,
भारती मिलजुलकर गाते रहेंगे झंडा वंदन के साथ जन भाषा ,
पूरे विश्व को अहिंसा , सत्य का संदेश सुनाती सुरीली हिंदी
पूरे भूगोल में विश्व प्रेम की आरती उतारती रसीली हिंदी?

पूर्व प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिंदी विभाग, एम.जी.कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

किन्नर विमर्श और समकालीन हिंदी कहानियाँ 'कथा और किन्नर' के विशेष संदर्भ में

डॉ. अंबिली.टी

सारांश

वर्तमान हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श का पदार्पण मानवतावादी समतावादी विमर्श के रूप में हुआ। किन्नर विमर्श का लक्ष्य किन्नर लोगों के प्रति समाज की नज़रिया बदलने का सन्देश देना है। समकालीन हिन्दी कहानीकारों ने विशेषतः नितांत नवीन कहानीकारों ने किन्नर संबन्धी अपनी संवेदनाएँ प्रकट की हैं। 'कथा और किन्नर' ऐसा कहानी संकलन है, जिसकी रचना सन् 2018 ई में हुई थी। इसमें किन्नर विमर्श पर लिखी गई पच्चीस अद्यतन कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ बताती हैं कि किन्नरों की हीन भावना को बदल देना समाज का कर्तव्य है। उन्हें किन्नर होने पर गर्व करना है। किन्नर विमर्श की दृष्टि से ये कहानियाँ अत्यंत सफल हैं।

बीज शब्द : किन्नर, शोषण, मुख्यधारा, विस्थापन, बेदखल, हीन भावना, मानवतावादी उभयलिंगी, संवेदना, शोषण

साहित्य वही है जो सबको साथ लेकर आगे बढ़ता है। सभ्य मानवतावादी, न्याय युक्त सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने में साहित्य प्रतिबद्ध है। साहित्य को जाँचने की कसौटी है आलोचना।अब साहित्य में आलोचना की कसौटियों के रूप में विभिन्न प्रकार के विमर्श आए हैं। यह साहित्य, शोषण, अन्याय एवं अस्तित्व शून्यता से उबरने के लिए लिखा गया साहित्य है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श का पदार्पण मानवतावादी समतावादी विमर्श के रूप में हुआ। किन्नर को हम हिजडा, कोज्जा, माद्दा, नंगाई, खुसरा, पवैये, मंगलमुखी नपुंसक, अरुवन्नी, उभयलिंगी, खोजवाँ आदि नामों से पुकारते हैं। 'ट्रांसजेंडर' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है- ट्रांसजेंडर। 'ट्रांस' का अर्थ है दूसरी अवस्था में, 'जेंडर' का अर्थ लिंग है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति की पहचान, ट्रांस महिला और ट्रांस पुरुष के रूप में होती है। पुरुष ट्रांसजेंडर उस पुरुष को कहा जाता है जो स्त्री के रूप में पैदा हुई थी, पर उसे पुरुष के रूप में पहचाना जाता है। फीमेल ट्रांसजेंडर उस महिला को कहा जाता है, जो पुरु ष के रूप में पैदा हुआ था, पर महिला के रूप में पहचाना जाता है। ट्रांसजेंडर विमर्श का लक्ष्य इन लोगों के प्रति समाज की नज़रिया बदलने का संदेश देना एवं इन लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाकर इनका पुनर्वास करना है।

आदिकाल से ही किन्नरों का अस्तित्व रहा था। किन्नरों ने रामायण- महाभारत कथाओं में अपना स्थान ग्रहण कर लिया था। पर आज उसकी हालत अत्यंत दयनीय बन पडी है। वह तो परिवार, समाज एवं सामान्य जनता से भी बाहर है। वह शिक्षा के अवसर से वंचित है। शिक्षित किन्नरों को भी कोई, नौकरी देने के लिए तैयार नहीं। किन्नरों को मुख्य धारा में लाने के प्रयास हुए हैं पर ये विफल हुए।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन की चुनौतियाँ समाज का ध्यान आकर्षित कर रही हैं। किन्नरों के प्रति साधारण जनता में जो घृणा का भाव था, अब उसमें थोडा सा बदलाव आ गया है। फिर भी किन्नर विभिन्न क्षेत्रों में वंचित ही रह गये हैं। हिन्दी में कुछ उपन्यासकारों ने भारत के विभिन्न किन्नर समुदायों के जीवन के नग्न चित्र खींचने का प्रयास किया है। हिन्दी में किन्नर समुदाय पर केंद्रित पहला उपन्यास है सन् 2000 ई में प्रकाशित नीरजा माधव का 'यमदीप'।

महेंद्र भीष्म के 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल', अनुसूया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्‌गल का 'पोस्ट बक्स नं 203 नाला सोपारा', पंकज बिष्ट का 'पंखवाली नाव'- आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा किन्नर साहित्य में नाटक और कहानियों की भी रचना हुई हैं।

समकालीन हिन्दी कहानीकारों ने विशेषतः नवीन कहानीकारों ने किन्नर संबन्धी अपनी संवेदनाएँ प्रकट की हैं। कथा और किन्नर प्रसिद्ध, अल्पज्ञात एवं अद्यतन कहानीकारों की कहानियों का संकलन है, जिसकी रचना सन् 2018 ई. में हुई थी। इस संकलन की कहानियों के संबन्ध में इस प्रकार कहा गया है- "प्राचीन काल से वर्तमान काल तक उपेक्षित, प्रताडित, शोषित तृतीय लिंगी समाज के जीवन से संबन्धित विविध पक्षों को प्रस्तुत करता है।"[1]

भारतीय समाज में जननांगों से अपंग शिशुओं को माता पिता छोड़ते हैं। ऐसे अपंग शिशु के जन्म की खबर मिलते ही किन्नर समुदाय उस परिवार से शिशु को माँगकर या बलपूर्वक प्राप्तकर अपने समुदाय में पालन पोषण करने के लिए लेकर चले जाते हैं। पारिवारिक विस्थापन की समस्या एक ज्वलंत समस्या के रूप में उभरकर आयी है। उस शिशु को किन्नर समुदाय की प्रथा के अनुसार जीना पडता है। ये सभी अधिकारों से वंचित हैं। समाज इन्हें भेदभाव की दृष्टि से देखता है। प्रस्तुत संकलन में आनेवाली डॉ.नंदलाल भारती की कहानी हिज़डा में समानता के लिए आवाज़ उठानेवाले निषेधबाबू का चित्र उल्लेखनीय है। वह गोपालबाबू से कहता है?- "किन्नर भी इंसान होते हैं। उन्हें भी आदमी होने का हक मिलना चाहिए। वे भी इसी धरती पर पैदा हुए हैं, वह भी माँ की कोख से, जैसे हम और आप पैदा हुए हैं।"[2]

प्रेम में देह, जाति, धर्म, लिंग, वर्ण और रंग के लिए कोई स्थान नहीं। किन्नर लोग भी संवेदनशील होते हैं। इनके भी दिल और दिमाग हैं। पर इन्हें प्रेम करने से मनाही है। डॉ. नंदलाल भारती की 'हिजडा' कहानी का विक्रम बाबू कहता है- "किन्नर भी प्यार के भूखे होते हैं। वे भी प्रेम, नफरत और दुत्कार की भाषा समझते हैं। इन्हें इज़्जत देते तो वे धमाचौकडी क्यों करते?"[3]

बचपन से ही किन्नरों को दुःख का आसव पीकर बडा होना पड़ता है। फिर भी दूसरों को आशीष देकर ये उन्हें हँसाते हैं। ईश्वर की नीति अति क्रूर है। समाज में हिजडा बनकर जीना अभिशाप है। एक हिजडे का दुःख दूसरा हिजडा ही समझ सकता है। जन्म से मृत्यु तक ही नहीं, उसके बाद भी सभी प्रकार का अपमान सहना पडता है। इस कहानी का निषेधबाबू कहता है- "मरते हैं तो भी किसी को भनक तक नहीं लगने देते, कहाँ लेकर जाते हैं, कहाँ दफनाते हैं, पता है! नहीं ना, शायद किसी को यह रहस्य मालूम नहीं होगा। सोचो कितना बडा बलिदान करते हैं, जो समाज उन्हें पैदा होते ही फेंक देता है, उसके सामने हिजडे शव तक नहीं आने देते। कितना दर्द होता होगा।"[4] जिस समाज में हम रहते हैं, उसी समाज के सदस्य हैं ये किन्नर लोग भी। फिर भी क्रूर समाज विचित्र जीवी के रूप में इनसे व्यवहार करता है।

'हिज़डा' कहानी में लेखक कहते हैं कि "सरकार और समाज किन्नरों के उद्धार के लिए काम किये होते तो किन्नरों की ताकत देश और समाज के लिए उपयोगी साबित होती। पर रूढ़िवादी समाज ने अच्छे काम करने से रोक लिया। कहानीकार अपनी राय प्रकट करते हैं कि अगर हिजडा लोग हिंसक हुए हैं तो उसके लिए समाज की क्रूरता ही जिम्मेदार है।"[5]

हिजडों को दान देना पुण्य माना जाता है। गोपाल बाबू का कहना है कि ये ब्रह्मा के मुँह से पैदा हुए लोग हैं। इन्हें दान देने से लोगों को पुण्य मिलता है। किन्नरों के आराध्यदेव हैं अरावन देव। डॉ. महेंद्र प्रताप सिंह की 'अथ किन्नर कथा' कहानी की किन्नर मीरा, धर्म संबन्धी अपने समुदाय की मान्यताओं के बारे में

कहती है- "हमारे आराध्य ने समाज के हित के लिए अपना बलिदान दिया। उन्होंने धर्म की स्थापना हेतु अपने विवाह के तत्काल बाद अपनी बली दी। ऐसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। हम किन्नर भी उसी का निर्वाह करते हैं। हम दूसरों के लिए हँसते हैं तथा दूसरों की खुशी में प्रसन्न होते हैं।"[6]

किन्नरों में भी छोटी संख्या में कलाकार और साहित्यकार हैं। 'कथा और किन्नर' कहानी की मीरा तो अच्छी कवयित्री है। उसकी राय में सच्ची कविता पीडा से उत्पन्न होती है। किन्नरों के प्रति जो पूर्व धारणाएँ हैं, वे धारणाएँ मीरा को देखने पर बदलती हैं। ये अवसर मिलने पर राजनीति, शिक्षा, शास्त्रीय नृत्य तथा अन्य क्षेत्रों में विशेष निपुणता प्रकट करती हैं। किन्नरों पर शोध करनेवाली श्यामा, हिन्दी फिल्मों में काम करनेवाली और भरतनाट्म की अच्छी कलाकार लक्ष्मीनारायण, प्रधानाचार्या के रूप में काम करनेवाली किन्नर मानवी बन्दोपाध्याय, सुप्रसिद्ध सामाचार वाचक पद्मिनी प्रकाश आदि उदाहरण हैं, जो विभिन्न कहानियों में आनेवाली पात्र हैं।

समाज द्वारा तिरस्कृत किन्नर अकेलेपन का शिकार होता है। इनकी मुस्कान के पीछे अनगिनत अश्रु हैं। 'वो एक किन्नर' ईशा शर्मा की कहानी है। इस कहानी की किन्नर कुमारी लेखिका से कहती है- "कोई भी ऐसा जीवन नहीं जीना चाहता दीदी। इसलिए हममें से न जाने कितने किन्नरों ने, इस दुनिया के समक्ष एक हास्य का पात्र बनने से अच्छा आत्महत्या करना समझा..... हम श्रापित हैं और हम इस श्राप को कभी अपने अस्तित्व से दूर नहीं कर सकते।"[7]

पर ध्यान देने की बात यह है कि इश्वर ने इस जग में किन्नरों को ही वह ताकत प्रदान किया है, जिसके द्वारा वह अपनी दुआ देकर किसी का भी भाग्य चमका सकती है।

किन्नर चाहे अत्यंत होशियार एवं शिक्षित हो, नौकरी से निकाल दिया जाता है। मोहित शर्मा जहन की 'किन्नर माँ' ऐसी कहानी है, जिसकी रुमी नामक पात्र तो अत्यंत होशियार है, जो पुलिस अफसर का एक्ज़ाम करने जा रही है। इस कहानी की सरोज, बिल्लो से कहती है -"तुझे पता है, रुमी फिसिकल टेस्ट में औरत नहीं निकलेगी। सबका बराबर हक बस करने की बात है। हम जैसों को देखते ही निकाल देते हैं कोई न कोई बहाना बनाकर।"[8]

डॉ अरविंद कुमार की 'एक जैस' कहानी में सेक्सवर्करों एवं हिजडों के बाज़ार का भी चित्रण है। एक किन्नर युवती पूछती है - "बाबू साहब हम लोगों को कौन नौकरी देगा। हमें बुरी निगाह से देखा जाता है, जैसे हम इनसान ही नहीं। हम कोई भोग की वस्तु है।"[9]

किन्नर लोग विवशता के कारण पेट भरने के लिए भीख माँगते हैं। पर समाज इन्हें भीख के बदले गालियाँ देते हैं। कुछ किन्नरों की धारणा यह है कि उसका काम तो केवल नाचना गाना और पैसा कमाना है। मोहित शर्मा जहन की 'किन्नर माँ' कहानी की बिल्लो अपनी बेटी रुमी को जब आगे पढाने का तैयार करती है तो किन्नरों का समूह रोकता है। सरोज का कहना है- "नशा किया है तूने? शादी का सीज़न है, काम पे लगा इसको।"[10]

नीना अन्दोत्रा पठानिया की 'मिस्टी' कहानी की सुधा ने हिजडे बच्चे को जन्म दिया था। तब पूरे परिवार में हिजडों को बुलाने और बच्चा सौंपने की बात चल रही थी । हिजडों का नाम सुनते ही, उसके रूप, वेशभूषा, बेढंगे बाल सभी के बारे में सोचते ही सुधा के मन में डर लग रही थी। अपने ही बच्चे को नष्ट होने की व्यथा अनिर्वचनीय है। कहानीकार कहते हैं कि - "हर माँ की तरह सुधा भी अपने बच्चे की वकालत शुरू कर रही थी, सबके आगे अपने वे सारे सपने रख रही थी, जो उसने वर्षों से इस दिन के लिए देखे थे।"[11]

सुरेश कुमार की 'अंधेरे की परतें' कहानी की

निशा ने एक हिजडे को जन्म दिया। खबर सुनते ही समाज की प्रतिक्रिया देखिए- “आस-पडोस में भी उसके इस बच्चे का पता लग चुका था। शायद इसलिए कोई उसे देखने भी नहीं आया। पता नहीं क्यों समाज में ऐसा होता आया है। समाज में देवी देवताओं में इस तरह के चरित्र पैदा हुए हैं। उसकी तो सब पूजा अर्चना भी करते हैं। फिर ऐसा होना किसी के बस की बात भी तो नहीं। परंतु भेदभाव का शिकार उसे सारी उम्र बना रहना पडता है।”[12] हिजडा परेश के पिता रवि घरबार छोडकर चले जाते हैं। निशा और हिजडा बेटा परेश अकेले रह जाते हैं। निशा ने बेटे परेश के साथ जीवन लीला समाप्त करने का निश्चय किया। ये आगे चलकर समाज के उपहास का पात्र न बनना चाहते थे। समाज की रूढिवादिता पर प्रहार करके निशा परेश से कहती है - “बेटा, ये समाज वास्तव में समाज नहीं है। ये रूढियों और गंदगियों से भरी बस्तियों के समूह हैं, जो असामान्य को कभी सामान्य नहीं बनते देते। यहाँ तो कई बार इंसान समाज की वजह से अपना सबकुछ खो देता है। उसे भी यह समाज अपनाने से परहेज करता है।”[13] किसी तरह निशा घोर अंधकार से परेश को बाहर खींचने का प्रयास करती है, तो भी समाज जीने नहीं देता।

अलका प्रमोद की ‘इतनी देर में’अत्यंत मर्मस्पर्शी कहानी है। कहानी बताती है कि जब किन्नर बच्चा जन्म लेता है, लोकलाज के भय से माता पिता किन्नर समूह को सौंपता है। जब बच्चा बडा होता है, तो माँ, बापू तथा अन्य रिश्तेदार वापस घर बुलाने आते हैं तो ये बच्चे जाने के लिए तैयार नहीं होते।

कविता विकास की ‘पहचान’ कहानी में ठाकुर के अत्याचार के शिकार किन्नर माँ रुबीना अपनी बिरादरी को छोड़कर भाग आयी थी। तब ठाकुर, रुबीना को धमकी देते हुए कहता है- “भागकर आयी थी न, अपनी किन्नर बिरादरी से। दगाबाजी की थी न, ले अब वायरल किये देता हूँ तेरी यही तस्वीर। तेरे बिरादरीवाले पहचानकर ले जाएँगे तुझे और दगाबाजी के जुर्म में जाने की सज़ा दें। तुझे पता ही होगा। बेटी भी माँ की नग्न तस्वीर देखकर शर्म से आत्महत्या कर लेगी।”[14] बडी छोटी उम्र में ही रुबीना को सज धज के पैसे वसूलने जाना पडता था। इनकार किया तो मार खाना पडा था। किन्नर समूह के नेटवर्क में पड़कर अंत में रुबीना को आत्महत्या करना पड़ता है।

भारत को स्वतंत्र कराने में किन्नर समाज ने अहं भूमिका निभाई थी। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब इन लोगों को विश्वास हो गया कि इनको समाज में वही स्थान मिलेगा, जो एक स्त्री या पुरुष के लिए मिला है। पर वे स्वप्न, स्वप्न ही रह गये।

किन्नर लोग हर क्षेत्र में वंचित रह गये। विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में। रवि कुमार गोंड की ‘प्रतिमान’ कहानी में किन्नर लक्ष्मी को शिवजी के मंदिर से एक बच्चे को मिला था। उस बच्चे को शिक्षा देकर उसका भविष्य सुनहला बना देना वह चाहती है। पर जब स्कूल में भरती के लिए जाती है तो मास्टर साहब उस समर्थ बच्चे का तिरस्कार करके कहता है- “यहाँ कोई हिजडों के लिए विद्यालय नहीं खुला है। हिजडे पढ़ने लिखने लगेंगे तो बाकी क्या काम छीलेंगे। अरे तुम लोगों का काम तो लोगों का मनोरंजन करना है। वहीं जाकर करो और इसे भी वही सिखाओ। यह कलेक्टर बनने से नहीं रही।”[15]

हिजडे लोगों में कुछ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हैं। इसलिए ये संघर्ष भी करते हैं। अजय कुमार चौधरी की कहानी ‘वो किन्नर’ की रानी संकल्प लेती है कि वो अपना हक लेकर ही रहेगी। इसलिए जो उसके जैसा है सबको इकट्ठाकर उसे सम्मान से जीने का रास्ता दिखा रही है। पर अभी भी उसका संघर्ष खतम नहीं हुआ है। वो ऐसे किन्नरों को पढा लिखा भी रही है। जो अपनी आदतें छोडने का नाम तक नहीं लेती है, उसे अभिशाप के रूप में माना जाता है।

ईशा शर्मा की कहानी वो एक किन्नर में

कहानीकार अपनी राय प्रकट करते हैं कि किन्नरों को किन्नर होने पर गर्व करना है। ईश्वर ने समस्त जग में मात्र किन्नरों को ही यह शक्ति प्रदान की है, जिसके द्वारा वह अपनी दुआ देकर किसी का भी भाग्य चमका सकता है।

अखिलेश निगम अखिल की कहानी 'आखिर कब तक?' में कहानीकार उपदेश देते हैं कि यदि अपने घर किसी किन्नर बच्चे ने जन्म लिया हो तो कृपया उसे किन्नरों को मत सौंपें। उसके भविष्य को अंधकारमय मत बनायें। अगर आप उसका पालन पोषण नहीं कर सकते तो उसे हमें सौंप दें। हम उसका पालन पोषण कर उसको शिक्षा दीक्षा देकर उसे राष्ट्र का सभ्य नागरिक बनायेंगे। इस कहानी का सेठ रामेश्वर प्रसाद समाज सेवी है, जो दिव्यांग अंधे अनाथ बच्चों के लिए कॉलेज चलाते हैं। इस कॉलेज से शिक्षा प्राप्त बच्चों को नौकरी भी दी जाती है। कहानीकार शंका प्रकट करते हैं कि "किसी बालक के किन्नर पैदा होने में उसका क्या दोष? समाज उसे उपहास की दृष्टि से क्यों देखता है? उसने ऐसा कौनसा अपराध किया है, जिससे आपका सभ्य समाज उसके प्रति करुणा दिखाने के बजाय उसका मखौल उडाता है? आखिर कब तक किन्नरों को समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाएगा?"[16]

कथा और किन्नर कहानी संग्रह के कहानीकारों ने अपने जीवन एवं समाज के विभिन्न स्तरों प्राप्त अनुभवों को आधार बनाकर तृतीय लिंगी समाज की संवेदना का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इस पुस्तक के संबन्ध में ऐसा कहा गया है कि "प्राचीन काल से वर्तमान काल तक उपेक्षित, प्रताडित, शोषित तृतीय लिंगी समाज के जीवन से संबन्धित विविध पक्षों को प्रस्तुत करता है।"[17]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'कथा और किन्नर' ऐसा कहानी संकलन है, जिसमें विभिन्न प्रकार के शोषण का शिकार बनने के लिए विवश किन्नरों के जीवन का सच्चा चित्रण हुआ है। ये कहानियाँ कहती हैं कि किन्नरों की हीन भावना को बदल देना समाज का कर्तव्य है। उन लोगों की सोच को बदलना है। किन्नर बच्चों को शिक्षा देकर सभ्य नागरिक बनाना है। उन्हें आत्म निर्भर बनाना है। कानून ने इन लोगों को थर्ड जेंडर की मान्यता तो दे दी है। समाज और सरकार को आगे आना है। प्रस्तुत संकलन के सभी कहानीकार किन्नरों के अधिकारों के प्रति अत्यंत सजग हैं। सचमुच कथा और किन्नर , किन्नर विमर्श के संदर्भ में एक उल्लेखनीय रचना ही है।

संदर्भ संकेत

1. कथा और किन्नर- पुस्तक परिचय, प्रथम सं- 2018, अमन प्रकाशन,कानपुर
2. वही - पृ 13
3. वही पृ 14
4. वही - पृ 15
5. वही - पृ 14
6. वही - पृ 20
7. वही - पृ 30
8. वही - पृ 32
9. वही - पृ 24
10. वही - पृ 32
11. वही - पृ 63
12. वही - पृ 77
13. वही - पृ 79
14. वही - पृ 49
15. वही - पृ 56
16. वही - पृ 45
17. विजेंद्रप्रताप सिंह- कथा और किन्नर - भूमिका

सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम, केरल
Email- ambilihindi@gmail.com. Mob- 9495369970

दलित साहित्यः कुछ अंदरूनी अंतर्विरोध

डॉ.सी. बालसुब्रह्मण्यन

साहित्य का रूप, उसकी विधा, उसमें चित्रित काल, उसकी शैली, उसमें चित्रित जाति-धर्म-वर्ण इत्यादि कुछ भी हों, वह जीवन का सौन्दर्यात्मक चित्रण है। यहाँ सौन्दर्य का तात्पर्य सुन्दर-कुरूप या हीनता-श्रेष्ठता की भावना से परे कुछ अलग ढंग से जीवन का चित्रण करना है। उसमें अब तक कलाकारों या साहित्यकारों द्वारा अपनाए गए और भविष्य में अपनाने वाले सौन्दर्य के सभी रूप, शैली, तकनीक रीति-पद्धति सब कुछ समाहित हो जाएँगे। इस विराट अर्थ में दलित साहित्य भी जीवन का सौन्दर्यात्मक चित्रण है। जीवन अपरिमेय एवं परिभाषाओं के परे रहनेवाली एक अनुस्यूत प्रक्रिया है। उसमें निरंतर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होते रहते हैं। नए-नए मूल्यों, नियमों, कायदों, सिद्धांतों का आगमन-निर्गमन तथा निष्कासन जीवन की विशेषता है। जीवन का सौन्दर्यात्मक चित्रण होने के कारण दलित साहित्य में भी ये सारी बातें प्रतिफलित हो गई हैं, हो जाती है और भविष्य में होनेवाली हैं।

जीवन में अपने आरंभिक दौर से ही राजनीतिक भावना की घुसपैठ होगी। यहाँ राजनीति का मतलब, दलीय राजनीति से परे की भावना से है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने आरंभिक दौर से ही, भाषा की पहचान के काल से ही जीवन की अपनी राजनीति थी। उसने सभ्यता के विकास के सिलसिले में उत्तरोत्तर बढ़कर अपने विविधोन्मुखी विचारों, सिद्धांतों, नियमों-कायदों के माध्यम से जीवन की गतिविधियों को रूपायित-निर्मित करने में बड़ी भूमिका निभायी। इसके फलस्वरूप कई वादों-आन्दोलनों आदि का जन्म हुआ, उन सबका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। इस विराट एवं अनुस्यूत प्रक्रिया के प्रतिफलन एवं परिणाम के रूप में ही दलित-पार्श्वीकृत आन्दोलनों और साहित्य को देखना-परखना होगा।

यह बात सुविदित और निर्विवाद है कि दलित साहित्य अस्मितामूलक साहित्य है और अन्य अस्मितामूलक साहित्यों की तरह उत्तराधुनिकता के आगमन से इसको अधिक शक्तिमिली। इसलिए भारतीय साहित्य की ही नहीं विश्व साहित्य की विविध आधुनिकताओं में एक है दलित आधुनिकता। यों विमर्शों के नए-नए रूपों में स्त्री आदि से संबद्ध आधुनिकताएँ देख सकते हैं।

स्वच्छंद वैचारिक पृष्ठभूमि, जिरह और बुलंद अभिव्यक्तियाँ जिनके पास होती है, वे ही अपने तबके के लोगों के लिए अचल खडे हो सकते हैं, उन्हें बचा सकते हैं। इसी स्तुत्य कार्य का समारंभ ही अंबेडकर, महात्मा फुले, पेरियार प्रभृति दलित आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने किया है और इसकी शाब्दिक अभिव्यक्तिही दलित साहित्यकारों ने किया है। अंबेडकर भारतीय मनीषियों में शीर्षस्थ थे। इसलिए उनके गहन विचारों का, विशेषकर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चिन्तन का आधार आधुनिकता है। वे आधुनिक मूल्यों के पुरोधा थे। उनके गहन विचारों का प्रतिफलन दलित लेखन में हुआ है। उनके चिंतन की धुरी छोडकर दलित लेखन नहीं है। लेकिन यहाँ एक अन्तर्विरोध की बात भी उठ खडी हो जाती है। वह है भारत की राष्ट्रभाषा के संबंध में अंबेडकर के विचार। अंबेडकर संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे - Ambedkar wanted Sanskrit as National Language.1 आज कोई भी दलित साथी इस बात का उल्लेख नहीं करना चाहता है कि अंबेडकर संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में थे। इसका कारण यह है कि दलित साहित्य संस्कृत भाषा, संस्कृत साहित्य, उसमें निर्मित-विकसित सौन्दर्यशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धांतों, प्रतिमानों का विरोध करनेवाला है। यहाँ अन्तर्विरोध का कारण यह है कि दलित अपनी वंचित पृष्ठभूमि, अतिनिम्न स्तरीय शिक्षा, रोज़गार का अभाव या दबाव की अवमानना के साथ अपनी मेधा, परिश्रम और ज़िद से टिके हैं। उनकी रचनाएँ तथा भाषा उनके अपने अनुभवों से सिंची हुई हैं। वस्तुनिष्ठता दलित साहित्य की विशेषता है, इसलिए सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के प्रतिमानों से उसे आँका नहीं जा सकता। इसलिए दलित विमर्श पर लिखनेवालों की यह समस्या हमेशा रहेगी कि आप किसी चीज़ की विशिष्टता जो किस हद तक रेखांकित करें ताकि यह इतिहास में दृश्यमान हो जाए और किस हद

तक उसे मिलाना चाहें कि लगे कि वह हमारी मुख्यधारा का ही हिस्सा है। यह दुविधा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच भी रहेगी, इतिहासकारों के बीच भी रहेगी और साहित्य सृजन में मग्न लोगों के बीच भी रहेगी।

मुख्यधारा की अवधारणा से आधुनिकता की प्रक्रिया वंचित हो जाती है, क्योंकि उससे सामाजिक न्याय और साहित्यिक विवेक कुंठित हो जाते हैं। मुख्यधारा के सिनेमा की तरह एक हद तक मुख्यधारा साहित्य में जीवन की सच्ची वास्तविकता की मौजूदगी नहीं है। जीवन की सच्ची एवं ज्वलंत वास्तविकताएँ पार्श्वीकृतों के साहित्य में ही देख सकते हैं। पार्श्वीकृत साहित्य वास्तविक, समस्या प्रधान और मार्गदर्शक होता है। गैरतलब बात यह है कि इतिहास में हमेशा आवर्तन-प्रत्यावर्तन होता रहता है। इसलिए आज के मुख्यधारा का साहित्य भविष्य में पार्श्वीकृत और पार्श्वीकृत साहित्य मुख्यधारा का साहित्य होने की स्वाभाविक संभावना है। दलित साहित्य इसका उत्तम दृष्टांत है। दलित लेखन समकालीन परिदृश्य में पार्श्वीकृत नहीं है। कुल आबादी के बीस प्रतिशत दलित होने के कारण उनके पास पर्याप्त राजनीतिक शक्ति है। दलित साहित्य और दलित विमर्श अत्यंत गहराई से भारतीय जीवन स्थितियों को समझते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं और आवश्यक विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर दलित जीवन विविधतापूर्ण और बहुआयामी है, उसके अंतर्विरोध है। इसलिए दलित साहित्य में चित्रित दलितों के जीवन यथार्थ भी विविधतापूर्ण, बहुआयामी और अंतर्विरोधों में से युक्तहै। उदाहरण के लिए दलित आत्मकथाओं में जो जीवन यथार्थ है वह कथा साहित्य के जीवन यथार्थ से बहुत भिन्न है। आत्मकथाओं में चित्रित परिवारों और प्रमुख पात्रों को उतनी सुख-शांति नहीं है जितनी कथा साहित्य के प्रमुख पात्रों या नायक-नायिकाओं को प्राप्त है। यह अंतर्विरोध की बात है। दूसरी ओर महागाथाओं और महाख्यानों के निषेध या निराकरण बुलंद करनेवाले उत्तराधुनिक परिदृश्य में उभर आने पर भी दलित विमर्श अपने आप एक महागाथा या महाख्यान में परिणत हो रहा है।

दलित विमर्श सदैव अपने से बाहर देखता है, अपने भीतर नहीं। दलित नारीवाद इस बात का सबूत है। दलित नारीवाद पर बारीक दृष्टि डालने से पता चलता है कि दलित नारीवाद दरअसल दलित एकता को खंडित-विखंडित करनेवाला एक नया विमर्श है। दलित नारीवाद का यथार्थ और उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि दलित विमर्श के (पुरुष) केन्द्रित यथार्थ और विचारों से भिन्न हैं। दरअसल मूल रूप में आर्यों और दलितों की सांस्कृतिक परिकल्पनाएँ अलग-अलग थीं। उदाहरणस्वरूप पितृसत्ता आर्यों की है, दलितों की नहीं। पितृसत्तातमक व्यवस्था में दलित और गैर दलित स्त्री की स्थिति में ज़मीन आसमान का अंतर है। गैर दलित स्त्री की स्थिति बेहत्तर है, दलित स्त्री की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। आर्यों के लिए देवता ही होते हैं, देवी नहीं। मूलतः दलितों की उपासना देवी के प्रति थी। लेकिन आर्यों से युग-युगों के संपर्क के फलस्वरूप दलित भी पितृसत्ता का अनुसरण करनेवाले बन गए हैं। इससे दलित नारियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय बन गई है। वे तीन प्रकार के शोषण के शिकंजे में पड गई हैं - जातिगत, लिंगपरक अर्थात् स्त्री होने की वजह से और गरीबी के कारण। मराठी लेखक बाबूराव बागुल की कहानी बाई दलित नारी की इस शोचनीय ज़िन्दगी को शब्दबद्ध करनेवाली रचना है। इस शोचनीय ज़िन्दगी ने दलित स्त्री में प्रतिरोध की सृष्टि की है जिससे उर्जा लेकर समकालीन परिदृश्य में दलित स्त्री-साहित्य और दलित नारी आन्दोलन शक्तिशाली हो रहे हैं। दलित लेखिकाओं द्वारा लिखित आत्मकथाएँ विशेषकर कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा दोहरा अभिशाप जैसी रचनाएँ और अन्य विधाओं की रचनाएँ इस संदर्भ में स्मृतिपटल पर रखने योग्य हैं। यों दलित विमर्श के भीतर ही अन्य छोटे-मोटे विमर्श होते हैं। उन सबको खामोश करके ही दलित विमर्श विजेता विमर्श बन गया है। दलितों के अंदर भी सवर्ण मानसिकतावाले होते हैं, या अपने आपको दलित मानना भी उनके लिए अत्यंत हीनता की बात है। कालीचरण प्रेमी की अपाहिज कहानी इस बात को उजागर करनेवाली है।

बड़े-बड़े सामूहिक कार्यों को जन्म देकर व्यक्ति को व्यक्तिवाद की तरफ ले जाना आधुनिकता की विशेषता है। यह एक अंतर्विरोधी-विरोधाभासी प्रवृत्ति है। दलितों में व्यक्तिवाद के बजाय बडे पैमाने पर सामूहिक कार्य की प्रवृत्ति विद्यमान है। उनके लिए धर्म परिवर्तन एक सामूहिक कार्रवाई या सामूहिक समारोह है। लेकिन आधुनिकता ऐसा समर्थन करती है कि धर्म परिवर्तन या अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म चुनने का अधिकार वैयक्तिकता या व्यक्तिवाद है। यह

सब अंबेडकर के ज़माने की बात है। अंबेडकर के ज़माने में दलित राजनीति में अस्मिता के लिए धर्म की जो भूमिका थी वह आज समाप्तप्राय है। आज दलित तो दलित ही हैं, उनके लिए धर्म विशेष महत्व की चीज़ नहीं है। दलित कोई धर्म नहीं है, उनका कोई धर्मग्रंथ भी नहीं है। उनके सोच-विचार, साहित्य, संस्कृति सब कुछ अलग हैं। वे निरंतर संघर्षरत हैं। इस संघर्ष और अन्य सामाजिक गतिविधियों से दलित एक महाविमर्श के रूप में तब्दील हो रहा है, उसका प्रचार-प्रसार हो रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की पंक्तियाँ हैं- हज़ारों वर्ष का अंधेरा/छिपा बैठा है मेरी सांसों में/कांपता है दिये की लौ सा/और तब्दील हो जाता है कविता में।

वर्तमान परिदृश्य में बाज़ार और मीडिया के हस्तक्षेप के बिना सामाजिक जीवन में कुछ भी नहीं चलता। दलित विमर्श में भी विश्वास बढ़ाने का काम बाज़ार और मीडिया द्वारा किया जा रहा है। दलित लेखन आजकल पैसा कमाने के लिए प्रकाशकों की पहली पसंद है। यहाँ दलित साहित्य से संबद्ध अर्थशास्त्र बहुत स्पष्ट है। दलित विमर्श की किताबें ज़्यादा बिकी जाती हैं। इस बिक्री के पीछे पूँजीवादी-बाज़ारवादी मानसिकता और राजनीति है। बाज़ार और मीडिया पूँजीपतियों के कब्जे में है। बाज़ार में, मीडिया द्वारा नियंत्रित बाज़ार में या बाज़ार द्वारा नियंत्रित मीडिया में कुछ भी चाहे वह संस्कृति हो, विश्वास हो, सपना हो, कुछ भी हो क्रय-विक्रय और मुनाफे की चीज़ होती है। एक ओर यह दलील है कि बाज़ार की वजह से दलितों की बेहत्तर स्थिति हो जाएगी। इसमें बड़ी हद तक सच्चाई भी है कि समकालीन परिदृश्य में दलित विमर्श उपेक्षित, कोने में पड़ा हुआ पार्श्वीकृत विमर्श नहीं है। दूसरी ओर यह भी गैरतलब है कि कई मीडिया संस्थानों और कारपरेटों में दलितों की उपस्थिति तक नहीं है। यह भी बडे अंतर्विरोध की स्थिति है।

द्वंद्व और विद्रोह की भावना जीवन और साहित्य की विशेषता होती है। दलित साहित्य का उद्‌भव ही आलोच्य सामाजिक-साहित्यिक द्वंद्व से हुआ। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से अर्थात् चैरासी सिद्धों के साहित्य में इसके नमूने देख सकते हैं। लेकिन वर्तमान परिदृश्य में, भारतीय संदर्भ में दलित साहित्य का आरंभ, दलित और सवर्ण के द्वंद्व का श्रीगणेश मराठी साहित्य में हुआ। यहाँ गलतफहमी भी हो सकता है कि दलित साहित्य का मतलब सदैव सवर्णों के प्रति द्वंद्व, विद्रोह, प्रतिकार या प्रतिशोध है। ऐसा नहीं है प्रमाणित करनेवाली रचना है सूरजपाल चैहान की कहानी 'अहल्या'। 'अहल्या' कहानी दलित और सवर्ण के द्वंद्व की नहीं, दलित और दलित के ऐतिहासिक द्वंद्व यानी उस द्वंद्व की है, जिसे इतिहास ने घटित किया है। नई पीढ़ी की पढ़ी-लिखी दलित बहू और उसकी सास की मानसिकताओं के द्वंद्व पर आधारित कहानी है। बहू के लिए मैला कमाने और जूठन खाने की परंपरा असह्य है, सास को स्वीकार।

दलित साहित्य और दलितवादी साहित्य की विभाजक रेखा पर भी चंद विचार प्रकट करना समीचीन लगता है। जन्म से जो दलित होते है, उनके द्वारा लिखित साहित्य दलित साहित्य है और गैर दलितों द्वारा दलित जीवन को लेकर लिखित साहित्य दलितवादी साहित्य। दलित जीवन पर सवर्ण लेखक लिखते आए हैं, दलित लेखकों से बहुत पहले से। इसलिए यहाँ दलित लेखक-दलितवादी लेखक की बहस में पड़ना वांछनीय नहीं है। विषय विवादास्पद है, महान कथाकार, प्रेमचंद पर विवाद है। आज भी दलितों की दुख-दर्द भरी ज़िंदगी का चित्रण करने वाले बहुत से गैर दलित लेखक होते हैं। उदाहरण के लिए उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास' एक विशिष्ट कोटि की रचना है, एक मुकम्मल मिसाल है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि दलित लेखक सिर्फ दलितों के संबंध में ही लिखते हैं या लिख सकते हैं, बाकी दुनिया के संबंध में नहीं लिख सकते। वे जो भोगते हैं, वही लिखते हैं। अनगढपन और खुरदरापन ही दलित साहित्य का सौन्दर्य है। श्रम सौन्दर्य की स्थापना उसकी मूल संवेदना है। दलित लेखकों के विचार में सामाजिक परिवर्तन में सहायक प्रतिरोध की चिनगारी ही सौन्दर्य बोध है। यहाँ जर्मन मूल के फ्रांसीसी राजनयिक, राजदूत एवं महान साहित्यकार Stephene Hessel द्वारा अपनी तिरानबे वर्ष की उम्र में लिखित इन्डिग्नदोस (Indignados) पुस्तक के अंतिम वाक्य का उल्लेख करना अत्यंत समीचीन लगता है - To create is to resist, to resist is to create.

संदर्भ 1. Times of India, 25th April 2016
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ. 22

सह आचार्य, हिन्दी विभाग, सरकारी विक्टोरिया कालेज
पालक्काड, केरल-678 001

प्रकृति और स्त्री-स्वत्व को बचाने की जद्दोजहत करती मनु की कविताएँ

डॉ.धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

मनु हिंदीतर भाषी राज्य केरल में हिन्दी के मौलिक कवि और लेखक हैं। केरल के कन्नूर जिले में सन् 1964 ई. में जन्मे डॉ. मनु को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए केरल हिंदी साहित्य अकादमी, राष्ट्रीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (केरल), ओ आबू स्मारक, राष्ट्रीय युवा उत्सव पुरस्कार आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। मनु बहु-भाषाविद् होने के साथ सहृदय रचनाकार हैं और उनके भीतर कविता सहज रूप से प्रस्फुटित होती है। उन्हें हिन्दी और अँग्रेजी के साथ उर्दू में भी सिद्धहस्तता प्राप्त है। विवेच्य रचनाकार का प्रथम काव्य संग्रह 'हम इंतजार में हैं' नाम से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। दूसरे काव्य संग्रह 'हम बेघर हैं' में 26 कविताएँ संकलित हैं जो आज के समय, समाज और बदलते मानवीय सरोकारों से हमें रू-बरू कराती हैं। अप्लाइड बुक्स, नई दिल्ली से प्रकाशित उक्त काव्य संग्रह की कविताओं में 'अहल्या अदालत में', 'यारों यही मेरा शहर है', एक पेशेवर औरत का यादनामा', 'काश वे दिन दुबारा आएँ', 'मेरी वजह से', 'इदारिया', और 'क़सूर किसी का आज़माइश किसी की' कविताएँ अन्य की अपेक्षा कुछ लंबी हैं। आज के तकनीकी समय में सब कुछ होने के बावजूद व्यक्ति अकेलेपन का शिकार है। पत्नी, बच्चा, घर और ऐशोआराम के सभी उपकरण से भी कोई संतुष्ट नहीं है। मनुष्य सर्वत्र तन्हाई से जूझता हुआ दिखाई दे रहा है- 'हम बेघर हैं/ घर होके भी/ हमें बेघर का एहसास होता है/ रिश्ते होकर भी/ हमें बेरिश्ते का एहसास होता है/ अकेलेपन में भी अकेलेपन का एहसास न हो/ दिलो-दिमाग में/ चिंगारियाँ हैं/ न आने वाले कल की!!!' (हम बेघर हैं, पृष्ठ-4) कवि ने ईंट-पत्थरों से बने मकान को अपने त्याग और भावनाओं से घर बनाने वाली स्त्री के जीवन संघर्ष को रचना में प्रमुखता से उठाया है। सृजन का आधार होने के बावजूद दुनिया के किसी समाज ने औरत के साथ न्याय नहीं किया। उसके बिना घर होते हुए भी मनुष्य बेघर है। स्त्री के बिना मनुष्य कहीं भी सुख और शांति से नहीं रह सकता। कवि स्त्री की कर्तव्य पारायणता को पाठकों के सम्मुख रखता है। 'हम बेघर हैं' संग्रह की कविताएँ कुछ इसी बात को बयां करती हैं। इसके साथ ही विवेच्य संग्रह में हमारा बचपन, गाँव, अमानवीयता, नैतिकता का ह्रास और प्रकृति की सुंदर छवि देखने को मिलती है।

'हम बेघर हैं' कविता संकलन की कविताओं में आज की आपाधापी भरी जिंदगी के बीच बचपन दिखाई देगा। बारिश की बूँदें, प्रेम, घर-परिवार, रिश्ते-नाते आदि सब कुछ इस काव्य संग्रह में विद्यमान है। ये कविताएँ हृदय को छूती हुई एक गंभीर विमर्श की मांग करती हैं। इन रचनाओं में आज के वे सामाजिक मुद्दे हैं जो हमारे जीवन से ताल्लुक रखते हैं और मानवता के लिए कलंक बने हुए हैं। कुछ पौराणिक आख्यान आज के संदर्भ में नए मूल्यांकन की मांग करते हैं। स्त्री के त्याग और बलिदान के बदले जन समुदाय द्वारा उसे तिरस्कृत और अपमानित करने की प्रवृत्ति इन कविताओं के केंद्र में है। इसके माध्यम से कवि चाहता है कि हमारे समाज में स्त्री और पुरुष के बीच समानता कायम हो और लंबे समय से दोनों के मध्य चलाने वाला विवाद समाप्त हो। स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं और यह तुलना बंद की जानी

चाहिए कि किसे ज्यादा महत्व मिले? जब एक के बिना दूसरे का वजूद ही नहीं है तो इसमें छोटे-बड़े की गणना बेबुनियाद है। 'यह रवैया नहीं मोहब्बत का' के माध्यम से मनु पूरे समाज को मोहब्बत बाँटना चाहते हैं- 'वतन के लिए हर वक्तहम हैं अमन की आस में/ मोहब्बत में हर वक्त हम हैं चमन की आस में/ यह जमीन है पैर तले, दुनिया जरूर जीत जाए/... यह रवैया नहीं मोहब्बत का हम हैं पवन की आस में/' (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 45)

'काश वे दिन दुबारा आएँ' कविता हमें बचपन की ओर ले जाती हैं। उस बचपन की ओर जब हमारा मन स्कूल में नहीं, दुकान में काँच के बर्तनों में रखी मिठाइयों पर लगा रहता था और छुट्टी होते ही उसकी तरफ भागना बच्चों की आदत होती थी। उन्हीं मिठाइयों को खरीदने के लिए दुकान पर बच्चों की भीड़ लग जाती थी। बचपन, जब बारिश में हम बिना छतरी के शोर मचाते मटियाली पानी के छींटे उड़ाते हुए घर की ओर निकल पड़ते थे। मौका मिलते ही गाँव के पास वाली नदी में तैराकी में लग जाते थे। आज के परिवर्तित परिवेश को कवि अपनी कविताओं में चित्रित करता हुआ कहता है कि आज के बच्चे हर जगह की मिठाइयाँ खाना पसंद नहीं करते। अब जीने का पैमाना बदल गया है। बचपना खत्म होता जा रहा है और बच्चे समय से पहले समझदार होते जा रहे हैं। जब आज कोई बच्चा कहता है कि आपको 'मौस' (माउस- कंप्यूटर की आउटपुट डिवाइस) पकड़ना आता है तो यकाएक बचपन के चूहे आँखों के सामने आ जाते हैं जिनके साथ हमारे न जाने कितने खेल होते थे। कवि बदले परिवेश का जीवंत चित्र उकेरता है- 'बच्ची उठाती है आवाज़/ क्या आप को/ 'मौस' पकड़ना भी नहीं आता/ हमारे जमाने में मौस/ सिर्फ़ चूहे का माना ही देता था/ फोन के मामले में भी/ उन दिनों के हम/ आज बहुत पीछे हैं/ लगातार कोने कोने से आती है यह/ फिर हर कहीं से आप आउट डेटेड हैं/ आउट डेटेड हैं/ मगर/आउट डेटेड के/ इन लम्हों में भी/ पुरानी यादें/ फिर दुबारा/ और कर आने को/ जी तरसता है/ काश वे दिन दुबारा आएँ।/ जो आउट डेटेड है (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 62) ऐसी बहुत सी पुरानी यादों को जो आज तकनीकी युग की भागमभाग भरी जिंदगी में लुप्त होती जा रही हैं, संजोने का उपक्रम कवि करते हुए दिखाई देता है। आज की आपाधापी भरी जिंदगी में हमारी संवेदनाएँ खत्म होती चली जा रही हैं और हमारे बच्चे हमसे दूर हो रहे हैं। ऐसे में यह कविताएँ हमें पुनः शहर की यांत्रिकता से दूर अपने बच्चों और अपने परिवार की ओर वापस ले जाने का प्रयास हैं। 'तुम जिद्द मत करो प्रिया' में कवि शहर के सूनेपन, खोखलेपन और दिखावेपन से दूर अपने गाँव लौटने का आग्रह विद्यमान है जहाँ झोपड़ी में खेलते बच्चे और मवेशी इंतजार कर रहे हैं- 'उस रूखी सूखी दुनिया को/ तुम बर्दाश्त नहीं कर सकती।/ वहाँ सूनापन है.../ हरेक का दिल खोखला है/ तुम उस दिखावे की दुनिया में/ जाने, जीने के लिए/ जिद्द मत करो प्रिये.../ देहात का हर दिन/ हर रात/ हर लम्हा / कितना सुखद है/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ-29)

'हम बेघर हैं' में संकलित कविताएँ समसामयिक विमर्शों में अपनी पहचान बनाती हैं। संग्रह की कविता 'अहल्या अदालत में' आज के समाज में महिलाओं की दशा को रेखांकित करती है। यह कविता स्त्री के पौराणिक स्वरूप, इतिहास और वर्तमान तीनों काल खंडों के समकक्ष ले जाकर बताती है कि पितृसत्तात्मक समाज में महिलाएँ हमेशा दोयम दर्जे पर रही हैं और उन्हें पुरुषवादी नजरिए से देखा जाता है। पितृसत्तात्मक समाज ने महिलाओं के साथ कभी भी न्याय नहीं किया। अहल्या हिंदू संस्कृति में पौराणिक किरदार के रूप में जानी जाती है। यह सप्तर्षियों में एक गौतम ऋषि की पत्नी है। सप्तर्षियों

की परिकल्पना पृथ्वी पर मानवीय गुणों के संरक्षण के लिए की गई थी और अहल्या उन्हीं सप्तर्षियों में से एक गौतम ऋषि की पत्नी थी। अहल्या के बारे में अधिकांश लोगों ने सुना होगा। अरबी भाषा में अहल्या का मतलब स्त्री है। वह स्त्री जो प्रकृति के कण-कण में एक सृजनात्मक शक्ति के रूप में विद्यमान है। हिन्दू संस्कृति में अहल्या सप्तर्षि में से एक गौतम ऋषि की अर्धांगिनी होने के बावजूद उसे बिना किसी गलती के सजा मिली। यह सजा स्वयं उनके पति गौतम ने दी। अहल्या की दास्तान बहुत ही दारुण है। उसे अपने से अधिक उम्र के ऋषि के साथ शादी करनी पड़ी थी- 'वह अरबी ज़बान की अहल्या है/ और/ वह पुराण का किरदार है/ आज वह संजीदातर मिथक है/ जुल्म बिन सजा भोगने वाली औरत के रूप में/ अहल्या है वह गौतम ऋषी की/ अहल्या की दास्तान दर्दनाक है/ उमर में अपने से बड़े/ गौतम से उसे शादी करनी पड़ी/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ-15) इस अनमेल विवाह के संदर्भ में आज भी स्त्री, पुरुष, नियम, कानून आदि सभी खामोश हैं। योनि के कारण महिलाओं का उत्पीड़न सदियों से होता रहा है। किसी खूबसूरत युवा लड़की का विवाह उम्रदराज ऋषि के साथ होना अजीब लगता है लेकिन अतीत में ऐसी घटना घटित होती है और हमारा समाज उसे मान्यता देता है। किसी खूबसूरत लड़की को पसंद करना एक व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और कानूनी नजर में क्या कोई गुनाह है? कानून सभी के लिए बराबर है लेकिन व्यावहारिक तौर पर इसका अनुपालन नहीं होता। कवि कविता के माध्यम से प्रश्न उठाता है कि जब कानून की नज़र में सभी समान हैं तो राजा इन्द्र द्वारा किए गए गुनाह की सजा अहल्या को ही क्यूँ दी गयी? राजा इंद्र ने अपना भेष बदलकर अहल्या से संबंध जोड़ा और गौतम ऋषि ने अहल्या को श्राप देकर पत्थर बना दिया। गलती राजा ने की जिसकी सजा अहल्या को मिली। लंबे वक्तके बाद अहल्या को राम के वन गमन के समय इससे मुक्तिमिली लेकिन इतने लंबे समय तक बिना किसी गुनाह के एक शोषित स्त्री निर्जीव पत्थर बनकर गर्मी, सर्दी और बरसात झेलने के लिए अभिशप्त रही। अहल्या से स्वर्ग के राजा इंद्र का संबंध बनाना क्या कोई सियासी साजिश है? गौतम की सजा औरत के उपर पुरुष सत्तात्मक समाज का हमला माना जा सकता है। एक औरत को पत्थर बनाना और पत्थर से पुनःऔरत बनाना कदापि उचित नहीं है। कमजोर को इतनी बड़ी सजा सिर्फ एक औरत होने के कारण मिलती है। कवि कानून और समाज से पूछता है कि क्या औरत पुरुष के लिए एक शिकार मात्र है जहाँ इन्द्र रूपी शिकारी जब चाहे तब उसे दबोच ले। अहल्या को एक औरत होने की सजा ऋषि द्वारा दी जाती है जबकि उत्तरदायित्व उसे सुरक्षा देना था। भारतीय पौराणिक मान्यता के अनुसार कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भारद्वाज ऋषियों का उत्तरदायित्व नियम, धर्म और मर्यादा की रक्षा कर प्रकृति के सृजन में सहयोग देना था। ऐसे में ऋषि गौतम का कृत्य क्या मर्यादा और आचरण के अनुकूल था? गौतम के महान कृत्यों के कारण ही गोदावरी नदी का नाम उनके साथ जुड़ता है। कहने का आशय है कि ऋषि गौतम और गोदावरी दोनों ही जीवनरक्षक थे ऐसे में ऋषि का कृत्य उनके नाम को कलंकित करता है। अहल्या के पत्थर बनने पर किसी ने गौतम ऋषि के खिलाफ आवाज नहीं उठाई। रिश्तेदार, समाज, सियासत, कानून आदि सभी राजा इंद्र के खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं जुटाते। अहिल्या पाँच माताओं द्रौपदी, सीता, अहल्या, मंदोदरी और तारा में से एक थी। यह सभी स्त्रियाँ अपने पतियों द्वारा प्रताड़ित होती रही। ये राजा और ऋषियों की पत्नियाँ होने के बावजूद अनाचार का शिकार हुईं। ऐसे में क्या आज कोई स्त्री अहल्या

बनना चाहेगी? पत्थर से स्त्री बनने के बाद अहल्या पुनः पूर्व रूप में अपनी जिंदगी प्रारंभ नहीं कर पाती। इसको लेकर के अधिकांश पुराण और उसके व्याख्याता खामोश हैं। इसी तरह आज की स्त्रियों के मामले में समाज का अधिकांश वर्ग चुप हो जाता है। स्त्री पर अपराध के न जाने कितने मुकदमें अदालतों में लंबित हैं और गौतम ऋषि जैसे न्यायाधीश चुप हैं। न्यायाधीश न्यायालय में इन्द्र जैसे कुकर्मियों को सजा देने में कतरा रहे हैं। कवि कविता में स्त्री को पौराणिक संदर्भों से निकालकर आज के परिवेश में मूल्यांकित करने का प्रयास करता है- 'रिश्तेदार सब चुप/ समाज सब चुप/ औरत जात सब चुप/ सियासत सब चुप/ क़ानून सब चुप/ क्योंकि शिकारी राजा है।' (हम बेघर हैं, पृष्ठ-18) पुराण, इतिहास और वर्तमान किसी ने भी स्त्री के साथ न्याय नहीं किया। आज स्त्री के लिए मुआवजे की मांग नहीं करते क्योंकि मुआवजे से उसकी इज्जत नहीं लौटाई जा सकती है। मुआवजे से औरत जात की आन-बान-शान नहीं लौटाई जा सकती है और न ही इसके द्वारा औरत पर होने वाले जुल्म को रोका जा सकता है। पुलिस एफ. आई. आर. लिखती है कि अहल्या गौतम की पत्नी है। इंद्र ने यौनिक रिश्ता उसके साथ में जोड़ा और उसने धोखा खाया। यहाँ अहल्या शिकार है और इंद्र शिकारी। यहाँ अहल्या वर्तमान स्त्री और इन्द्र व्यभिचारिता का प्रतीक है। आज स्त्रियों पर हो रहे अपराध पर कवि चिंता व्यक्त करता है- 'वतन के लोग/ शौक से मुंतजिर है कि औरत जात पर मर्दों का जिंसी जुल्म/ सदियों से होता आ रहा है/ क्या अहल्या को न्याय मिल जाएगा?/ क्या अहल्या का नाम पाँच माताओं की फ़हरिस्त से/ निकाल दिया जाएगा/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 21) विवेच्य कविता के माध्यम से कवि हमारी न्याय प्रक्रिया पर संदेह व्यक्त करता है चूँकि न्याय में लगने वाला समय न्याय की आकांक्षा को खत्म कर देता है जिसका खामियाजा हमारे देश की महिलाओं को भुगतना पड़ रहा है। 'बारिश की बूँदें' कविता में समाज द्वारा स्त्री को न समझने की पीड़ा कवि को होती है। समाज की प्रत्येक स्त्री की पीड़ा अलग-अलग स्तरों पर है। बेटी, पत्नी, माँ, बहन आदि न जाने कितने रूपों में स्त्री पुरुष के जीवन को पूर्णतः प्रदान करती हुई प्रकृति के सृजन में अपना योगदान देती है। किसी एक रिश्ते के द्वारा इसे नहीं समझा जा सकता- 'बारिश की एक बूँद से/ मैं बारिश को समझ न पाया/ वैसे ही/ तेरे जरिए/ नारी वर्ग को भी/ एक गुल से/ मैं तमाम बाहर को समझ न पाया/ वैसे ही/ तेरे जरिए/ नारी वर्ग को/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ-22) इसी प्रकार 'हवा की शरारतें' मानव जीवन के सतत प्रवाह में होने वाली गतिविधियों को चित्रित किया गया है। 'तनावर शजर' कविता में कवि आज के टूटते परिवार को लेकर चिंतित है। आज के शहरी जीवन शैली में बूढ़े माँ-बाप व्यथित हैं। बच्चों को लेकर सभी चिंता व्यक्त करते हैं लेकिन बुजुर्गों को तिल-तिल कर मरने के लिए वृद्धाश्रम में छोड़ दिया जाता है- 'याँ वाँ से दौड़े हुए आये हुओं की/ मेहरबानियाँ/ सिर्फ़ घोसले व परिंदे के बच्चों से थीं/ किसी ने भी शजर के कर्ब की/ परवाह कभी नहीं की/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 27)

'यारो यही मेरा शहर है' कविता में कामगार वर्ग की श्रमशीलता और पहचान का संकट जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया गया है। आज का समय पूँजीवादी बाज़ार का है जिसमें पैसे और दिखावे के आगे जाति कोई मायने नहीं रखती। शहरों में बाहरी दिखावे के आधार पर पहचान बनती है। शहरी जीवन दिन प्रतिदिन प्रकृति से दूर होता जा रहा है जिसे लेकर कवि की चिंता है- 'शहर में आब की कमी है/ पर शराब की कभी कोई कमी नहीं/ सारे शहर में सिर्फ

तीन चार शजर हैं/ सारे शहर के शजर वजीर के बंगले की/ चहार दीवारी के भीतर हैं/ वहाँ गिद्धों की भीड़ है/ कोई भी चिड़यि वहाँ बसेरा लेने नहीं आती/ यारो, / यह मेरे शहर की खासियत है।' (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 33) शहरी जीवन दिनोंदिन चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। पेड़-पौधे गायब होने से पानी, शुद्ध हवा आदि सभी आम आदमी की पहुँच से दूर हो रहा है। शोरगुल और तेज रफ्तार की गाड़ियों ने मानवीय जीवन को अपने वश में कर लिया है। कवि शहरी जीवन की सच्चाई बयाँ करते हुए कहता है कि शहर के यांत्रिक जीवन में माँ-बाप तक के लिए समय नहीं है जो अमानवीयता की पराकाष्ठा है- 'मैं गैर शादीशुदा आदमी हूँ/ मैं अपने माँ बाप के इकलौता बेटा हूँ/ वह बूढ़े कस्बे के बूढ़ालय में रहते हैं।' (हम बेघर हैं- पृष्ठ- 33) इसी तरह दे 'ये दूरियाँ' कविता भी आज के तकनीकी दौर में मानवीय सम्बन्धों में आए बदलाव को रेखांकित करती है। व्यक्ति साथ में रहते हुए भी यंत्रवत संचालित हो रहा है। हम एक घर में रहते हुए भी अपने पारिवारिक सदस्यों-मित्रों की भावनाओं को नहीं जानते। नए-नए संसाधन शारीरिक नजदीकी होने पर भी भावात्मक एकरूपता नहीं स्थापित होने देते जिससे व्यक्ति तनाव का शिकार होता है और कुछ समय बाद यही बीमारी का रूप धारण कर लेती है।

'कसूर किसी का आज़माइश किसी की' मनु की लंबी कविता है जिसमें फुटबाल के खेल के माध्यम से जीवन संघर्ष और जिंदगी के उतार-चढ़ाव को दिखाने का प्रयास किया गया है। फुटबाल में जिस तरह गोलकीपर का दायित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है वैसे ही परिवार में घर के मुखिया का स्थान सर्वोच्च होता है और वह ज़िंदगी के सभी तनाव झेलने को अभिशप्त होता है। खेल की तरह जीवन में भी उतार-चढ़ाव आते हैं और मनुष्य को उसका डटकर सामना करना चाहिए- 'सच है फुटबाल ज़िंदगी की तरह/ तनावों, दबावों सिर्फ खेलने वालों के लिए नहीं/ देखने वालों के लिए भी है/... हर खेल नया है/ पुराने से कोई वास्ता नहीं/ ज़िंदगी की तरह/ फोरवर्ड को हमेशा/ गोल करने का मौका मिलता है/ ... यह फुटबाल/ हमारी सामाजिक व्यवस्था की हू ब हू तस्वीर है/ (हम बेघर हैं, पृष्ठ- 106-107)

'हम बेघर हैं' की कविताएँ भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण हैं। मनु बहुभाषाविद् हैं जिसका प्रभाव उनकी कविता में दिखाई देता है। इन्होंने हिन्दी के साथ अँग्रेजी, अरबी और उर्दू के ऐसे शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में किया है जो जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त की जाती है। 'दिली बीमारियाँ', कभी न भूलें शुक्रिया अदा करना' और 'बारिश आशिक है' हाइकुनुमा नज़्में है। हाइकु तीन पंक्तियों का जापानी छन्द है जिसे हिन्दी में पहली बार प्रयोग का श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है। मनु द्वारा रचित 'आग लगी शमा की तरह', 'यह रवैया नहीं मुहब्बत का', 'नान नहीं फिर कैसे आन की बात करें', 'पर पर है परिंदे की सारी उम्मीदें' आदि गजलों को पढ़ते हुए पाठक भाव विभोर हो उठता है जो कवि के सृजनशक्ति का चमत्कार है। इन नज़्मों में गेयता और संगीतात्मकता दोनों विद्यमान है। इसके साथ ही संग्रह की अन्य कविताओं में छन्दमुक्तता भी देखने को मिलती है। छन्दमुक्तता आज की कविता में अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण विशेषता है जिसका प्रयोग कवि ने अपनी कविताओं में किया है।

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड
email-dpsingh777@gmail.com.
Mobile : 094546741

नई शिक्षा भाषा नीति और शिक्षण के बदलाव : विद्यालय और चुनौतियाँ

डॉ.सीमा चंद्रन

वर्तमान युग हिन्दी भाषा एवं उसकी क्षमता को बढ़ाने की माँग का युग है। नई शिक्षा नीति-2020 के तहत कई प्रश्न सामने आ रहे हैं। यहाँ हिन्दी भाषा शिक्षण के विद्यालयों में किस हद तक और कहाँ कायम है यह आँकना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसी को ध्यान में रखते हुए केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ और उसे भविष्य के लिए बेहतर बनाने के तरीके पर एक लघु शोध प्रबंध बनाने का कार्य साँचा किया गया। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि विद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई, पूर्ण रूप से सभी विद्यार्थियों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पा रही। वे हिन्दी के सही उच्चारण से अपरिचित हैं। त्रिभाषा सूत्र के तृतीय या 'ग' क्षेत्र के भू-भाग के होने का कारण चाहे तो हम दे सकते हैं, किन्तु उसे मात्र 'ग' क्षेत्र में सीमित न रखकर आगे बढ़ाने का वक्त निकल चुका है। इसके लिए विद्यालयों से कोशिश ज़रूरी है।

शिक्षक सही शिक्षण के लिए कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। अंकों की कमी के कारण अन्य विषय में भर्ती लेना, अन्य विषयों का न मिलने पर हिन्दी विषय को चुनना, साहित्य के प्रति अरुचि के बावजूद मात्र पढ़ने के लिए विषय को चुनना, शिक्षा का सही उपयोग न करना, वर्तनी एवं उच्चारण को शुद्ध करने का प्रयास न करना, हिन्दी शिक्षक द्वारा उचित तरीके से उच्चारण न हो पाना। बच्चों की कमी और नौकरी को बचाने के लिए बच्चों को बढ़ाने तथा अंक खुलकर देने की परंपरा का आगाज़ आदि चुनौतियाँ हैं। नई शिक्षा नीति-2020 भारत में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने देश में उच्च शिक्षा को ध्यान में रखते हुए 29 जुलाई 2020 को नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) को मंजूरी दे दी गई है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से छात्रों और शिक्षाविदों के साथ-साथ युवाओं के लिए रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे यही आश्वासन दिया गया है। इसके तहत राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा की पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीय शिक्षा और उत्तरदायित्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है। नई शिक्षा नीति-2020 के तहत केंद्र व राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा क्षेत्र पर देश की जीडीपी के 6% हिस्से के बराबर निवेश का लक्ष्य रखा गया है। नई शिक्षा नीति में वर्तमान में सक्रिय 10+2 के शैक्षिक मण्डल के स्थान पर शैक्षिक पाठ्यक्रम को 5+3+3+4 प्रणाली के आधार पर विभाजित करने की बात कही गई है। तकनीकी शिक्षा, भाषाई बाध्यताओं को दूर करने, दिव्यांग छात्रों के लिये शिक्षा को सुगम बनाने आदि के लिये तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने पर बल दिया गया है। इस

शिक्षा नीति में छात्रों में रचनात्मक सोच, तार्किक निर्णय और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। युवाओं के कौशल बढ़ाने की शिक्षा का प्रयोग इसमें महत्वपूर्ण माना गया है। अतः ज़रूरी है कि हिन्दी विद्यार्थी सिर्फ हिन्दी न लेकर अन्य विषयों को भी अपना क्षेत्र बनाए और उसे हिन्दी के साथ जोड़कर भाषाई बाज़ार को पैदा करें। भाषाई स्तर पर पढ़नेवाले बच्चों के लिए हमें ऐसी कंपनियों की सृष्टि करनी होगी जिसे बाज़ार में लाया जा सके और काम भी दिलाया जा सके। भाषा पढ़ने का स्तर अब आनेवाले समय में मात्र बोलचाल व कामचलाउ तक न रह जाए इसके लिए साहित्य का कार्य अनिवार्य है। विद्यार्थियों का ज्ञान मात्र साहित्य में ही नहीं अन्य विषयों में भी बढ़ाना ज़रूरी है। अंतरअनुशासिक पठन अनिवार्य हो रहा है। जीवन को सुगम व सरल होने के साथ-साथ दौर की माँग मनोरंजन भी है। मनोरंजन के क्षेत्र में हिन्दी अपनी पकड़ बना सकती है।

केरल के कासरगोड जिले में सरकारी विद्यालय में हिन्दी विभाग अभी तक कार्यरत था। वहाँ द्वितीय श्रेणी में हिन्दी पढ़ाई जा रही थी। नई शिक्षा नीति के तहत अब भाषा की आवश्यकता बोलचाल की पारंगत भाषा एवं रोज़ागार युक्त भाषा तक ही सीमित हो जाएगी। भाषा को बोलने लिखने और पढ़ने की कला व कौशल महत्वपूर्ण बना हुआ। यदि नई अंतर अनुशासिक शिक्षा व सही बेहतर उच्चारणयुक्त शिक्षा न दी गई तो हिन्दी की स्थिति अपनी पकड़ नहीं बना पाएगी। कांजनगाड के सरकारी स्कूल, तथा पेरिया के स्कूल के कुछ शिक्षकों और विद्यार्थियों की राय में इसे आगे ले आने के अवसर और पाठ्यक्रम पर गौर फरमाना आवश्यक है। विद्यालय से ही रोज़गार कौशल की शिक्षा देकर उस रुझान से विद्यार्थियों को आगे बढ़ाने की शिक्षा और शिक्षण दोनों स्मार्ट तरीके से देनी होगी। नई शिक्षा नीति 2020 चाहती है कि केवल अंक ही किसी के कौशल को आंकने का साधन न बनें, बल्कि उसकी सही क्षमता उसे आगे या पीछे ले जाएँ। हर एक विद्यार्थी अपने किसी एक विशेष क्षेत्र में पारंगत ज़रूर होता है। उस एक क्षेत्र पर फोकस कर आगे बढ़ें। शिक्षण के तरीके में बदलाव और हिन्दी की चुनौतियों का सामना कर एक नई हिन्दी भाषा-शिक्षण एवं कौशल का प्रयोग ही समाधान है।

संदर्भ-सूचि

1. www.drishtiias.com
2. केरल में हिन्दी प्रसार का एक प्रेरक दस्तावेज (drnarayanaraju.blogspot.com)
3. NEP 2020 and the Language-in-Education Policy in India - Navbharat Times Reader's Blog (indiatimes.com)

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी व तुलनात्मक साहित्य विभाग,

केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड

ई-मेल-seemachandran@cukerala.ac.in

मोबाइल-09447720229

एम.टी. के कथा साहित्य में स्त्री पात्र

लेफ्टिनेंट डॉ.षबाना हबीब

एम. टी. वासुदेवन नायर मलयालम साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों में एक है। अपनी रचना चातुरी से वह कई पीढ़ियों के आराध्य पात्र बन गए हैं। 1970 से अपनी लेखनी की शुरुआत करनेवाले एम.टी. मलयालम साहित्य के अभिन्न अंग रहे। अपने परिचित क्षेत्र से विषय चुनकर अनुभवों से उसे सींचकर प्रस्तुत करने में वे माहिर है। एम.टी.की रचनाओं में वाक्यों का आतिशबाजी नहीं, दार्शनिक चिंताओं का भार भी नहीं। फिर भी एक साहित्यकार की हैसियत से मलयालम साहित्य जगत में अपना स्थान जमा करने में एम.टी. सफल निकले हैं।

किसी भी रचना की सुन्दरता उसमें निहित चिंतन-मनन और विचारों की गहराई पर आधारित होती है। लेखक अनुभूत सत्य एवं भावात्मकता को उसी रूप में प्रेषित करता है जिस रूप में वह महसूस करते हैं। इसीलिए एम.टी. ने कहा कि जब कहानियाँ आत्मा से निकलती हैं तब रचना सफल हो जाएगी।

एम.टी. ने अपने कथा साहित्य में जिस प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण किया है, उसे व्यापक स्तर पर स्वीकार्यता नहीं मिली। इसका एक कारण यह है कि उनके ज़्यादातर स्त्री पात्र तिरस्कृत एवं उत्पीडित परंपरा की संकीर्णताओं के भीतर जकड़कर रहनेवाली हैं। ये पात्र टूटे प्यार के दुखद प्रतीकों के रूप में दिखाई देते हैं। बचपन में झेली गई यातनाओं से जन्मे प्रतिशोध की भावना एम.टी. अपने स्त्री पात्रों के ज़रिए व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। इसे महिला मुक्ति का आह्वान समझना बेहतर होगा, जिसे हम एम.टी. के पूर्वाग्रह भी मान सकते हैं। लेकिन यह तथ्य ध्यातव्य है कि एम.टी. ने स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न स्तरों को दिखाने की कोशिश की है।

मलयालम उपन्यास साहित्य के लंबे सफर में आज भी सबसे श्रेष्ठ उपन्यासों की कोटि में आनेवाले उपन्यास है 'मञ्ञ'। यह उपन्यास टूटे प्यार से तड़पती नायिका की कहानी के अतिरिक्त जिन्दगी में भोगे गए सूनापन एवं यातनाओं की गहराई से संपृक्तहै। 'मञ्ञ' उपन्यास को बाज़ारवाद की जीवन शैली के माध्यम से मातृत्व की विचारधारा को पुष्ट करने लायक उपन्यास कह नहीं सकते। इसके अतिरिक्त इसमें एम.टी. ने सफलतापूर्वक मानव मन की भावना को विमला नामक पात्र के ज़रिए दर्शाया है, जो किसी भी महिला के अवचेतन मन का प्रतिनिधित्व करता है।

'रण्डामूष़म' में भीम ने अपनी माँ के बारे में कहा था कि शुक्राणु स्वीकार करने के लिए तैयार हुए गर्भाशय, केवल बुवाई के लिए खेत, और क्या? आप लोग ऐसी स्त्री को नहीं देखा है न? मेरी माँ को। ये वाक्य बहुत ही चर्चित वाक्य हैं । इसमें स्त्री किस लिए है? उसे सिर्फ बच्चा पैदा करने के लिए उपयुक्त मशीन के रूप में देखे जाने की सोच पर प्रहार हैं।

स्त्रियाँ सिर्फ पीडाएँ सहनेवाली नहीं हैं, जीवन में आगे बढ़ने के लिए जिंदा रहने के लिए सतर्क भी हैं। अपने उपर हो रहे अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए हिम्मत रखने वाली भी है। ऐसे नारी के विभिन्न भाव-तल का चित्रण एम.टी. ने किया है। एम.टी. के स्त्री पात्र समान किस्म के नहीं है। उन्होंने स्त्री-पुरुष संबन्धों के कई रूपों को व्यक्त किया है। इसके चित्रण जिस रंगों में सींचकर किया है वह भी अलग है। सामान्य तौर पर उनके लेखन में स्त्री केंद्रित रचनाएँ बहुत ही कम हैं। ऐसी रचनाओं में 'वलर्तुमृगंडल', 'कुट्येडत्ति', 'ऑप्पोल, 'मञ्ञ' आदि प्रमुख हैं। आपकी समस्त रचनाओं पर दृष्टि डालें तो

स्त्री की सक्रिय उपस्थिति पायी जाती हैं।

एक महिला प्रधान परिवार में पला-बढ़ा एम.टी. कभी भी महिलाओं की उपेक्षा एवं अपमान नहीं करते। इसलिए ही नारीत्व की नाजुक और सूक्ष्म अभिव्यक्तियों कठोर और अहंकारी भावों को दर्शाने लायक कई महिला पात्र एम.टी. की रचनाओं में यत्र-तत्र है। ये पात्र वास्तविक होने के साथ-साथ केरलीय होने का एहसास भी दिलाता है। विभिन्न संदर्भों में जिन-जिन स्त्री पात्रों की सृष्टि उन्होंने की है उसका रूप, रंग, गुण बिलकुल अलग हैं। स्त्री पात्रों में वैविध्य दिखाई देने का प्रमुख कारण उनके व्यापक अनुभव क्षेत्र एवं जीवन के प्रति विशाल दृष्टिकोण ही है। स्त्री एम.टी की दुनिया में माँ के रूप में, बहन के रूप में, पत्नी के रूप में, बेटी के रूप में एवं साथी के रूप में आती है। नारी पात्र के जिन-जिन स्तरों का जिक्र किया है उसकी अपनी विशेषता एवं लालित्य होती हैं। एम.टी. ने माँ को बारिश से तुलना की है। बारिश जब बिजली के घन के साथ आते हैं, वैसे ही लिखते समय एम.टी. सामाजिक संदर्भों के साथ मातृत्व के महत्वपूर्ण पहलुओं को भी जोड़ने का प्रयास करते हैं। उनकी अधिकांश माताएँ अपने जीवन की जटिलताओं से उलझने के कारण प्यार प्रकट करने में कंजूसी दिखाती हैं। ये भी नहीं उनकी माँएँ 'क्रोध आते ही आमने-सामने जो कुछ भी पड़े हो उसे उठाके मारती हैं। इसके बाद अमुक समय देखकर सांत्वना भी देती है, बड़बड़ाती हैं और रोती भी हैं।

जिस पुरुष से प्यार किया है उसके साथ आगे की ज़िन्दगी बिताने का निश्चय करके भाग जानेवाली, नियति के मार खाकर सबकुछ खो देनेवाली, अपने बेटे के सामने हार न माननेवाली 'नालुकेट्ट' की पारुक्कुट्टी, जिससे प्यार करती थी उसके साथ जिन्दगी भर सुख चैन की सांस न लेनेवाली 'पातिरावुम् पकल वेलिचवुम की बीवी', 'करियिलकल मूडिय वषित्तारा' की जानकी, जिसने अपने मामा की इच्छा पूर्ति के लिए शादी करके सुख चैन से नहीं जी पाई, अपने भाई और मामा के जिद के कारण जिन्दगी कब्रिस्तान जैसे होनेवाली 'नुरुंगु श्रृंघलकल' के शेखर की माँ, किशोरावस्था की गलतियों को छिपाने के लिए अपने मातृत्व को छिपाकर जीने के लिए मज़बूर माँ (ऑप्पोल), समाज और नियति के हाथों की कठपुतली बननेवाली माँ एम.टी. की रचनाओं में यत्रतत्र हैं। अपने बच्चे को डाँटने के अगले ही पल में वह मेरे ही कोख से जन्मे है ऐसा एहसास होते ही सबकुछ भुलाकर बच्चे की ओर बढ़नेवाली माँ का रूप जो 'असुरवित्त' और 'कालम्' जैसी रचनाओं में देख सकते हैं। इन माँ को त्यागमयी लेबल के अंदर हम समेट नहीं सकते। ऐसी एक माँ जिसने विकट परिस्थिति में ज़िन्दगी आगे बढ़ाने के बावजूद भी अपने बच्चे को एक अच्छे इंसान बनाना चाहती है। पारिवारिक संबंधों को जोड़नेवाली माँ 'वित्तुकल' में पाए जाती हैं। एम.टी. की माँ को देखते ही ऐसा लगता है कि अनुशासन और सुरक्षा के विभिन्न भावों से सिंचित, विशुद्ध केरलीय अवधारणा की उदात्तता उनमें हैं। इन सबके बावजूद भी संयुक्त परिवार के चित्रण में एम.टी. ने स्नेह और अनुशासन के माध्यम से परिवार को संजोकर रखने वाली दादी, चाची और काकी जैसे स्त्री पात्रों की सृष्टि भी की है। ये भी नहीं ऐसी मौसी का चित्रण भी किया है जो अपनी भतीजी और भतीजों पर चाचा का प्रताप दिखाना चाहती हैं। माँ समान प्यार करनेवाली पडोसी महिलाएँ भी एम.टी. के स्त्री पात्रों में हैं।

एम.टी. ने मातृत्व की अवधारणा से बिलकुल अलग ढंग से बहन की अवधारण को प्रस्तुत किया है। एक बहन न होने का दुख वह अच्छी तरह समझता था। इसी इतिवृत्त पर आधारित है उनकी 'निन्टे ओरमक्क' नामक कथा। पिता के साथ घर आई लड़की नया तूफान खडा करती है। उस लड़की से कोई रिश्ता न होने के बावजूद भी वह मेरी बहन बने ऐसी दुआ करनेवाले मासूस लड़के का रूप कई कहानियों में दिखाई देता है।

'नीलक्कुन्नुकल' शीर्षक कहानी भी इसी तथ्य पर आधारित है। जीवन में सभी सगे-संबन्धियों द्वारा तिरस्कृत 'कुट्येडत्ति' के लिए वासु के मन में बहुत बडा स्थान है। दूसरे लोगों द्वारा मज़ाक का पात्र बननेवाली कुट्येडत्ति के अनेक कर्म वासु आराधना के साथ देखता था। अपनी बहन की पूजा करना, उनको हक दिलवाना, उनकी सुरक्षा हर हालत में करना ऐसी चिंता से युक्त भाई का चित्र 'हम' इस कहानी में देख सकते हैं।

घर के किसी सदस्य से कहे बिना अपने छोटे भाई को सिनेमा देखने के लिए पैसा भेजनेवाली बड़ी बहन, अपनी पहली रचना छपकर आते समय बड़ी बहन द्वारा उसको प्रोत्साहन देना, जिन्दगी के मोड में आगे बढ़ने के बाद भी पीछे मुड़कर उस बहन का भाई बनने की इच्छा भी प्रकट होती है। 'असुरवित्त', 'कालम', 'मञ्ज', 'कुट्येडत्ति', 'स्वर्गम तुरक्कुन्न समयम' आदि रचनाओं की बहनें इसका प्रमाण हैं।

एम.टी. की तूलिका माँ का चित्रण करने के बाद बहन के चित्रण में लगी तब भी संबन्धों की गहराई को कसकर पकड़ने में कसर नहीं छोड़ती। एक मित्र के रूप में और साथी के रूप में भी एम.टी. ने स्त्री-पात्रों की सृष्टि की हैं। 'दुखत्तिन्टे ताष़वरा' की ग्लोरी, और 'वलर्तुमृगङ्ङल' की जानम्मा जैसे पात्र ऐसे ही पात्र हैं। 'महानगरत्तिल' की सुन्दरी', 'विल्पना' की मिसिस परीख और 'कालम्' की नायिका मालिनी जैसे पात्रों को सहानुभूतिपूर्वक हम देख सकते हैं। असहाय एवं निरीह लोगों का चित्रण करते समय एम.टी. की तूलिका और भी नरम हो जाती है।

जिस कॉन्वास में एम.टी. ने पति-पत्नी के रिश्ते का चित्रण किया है, वह एकदम नवीन है। उनके अनेक उपन्यासों और कहानियों में पति-पत्नी के संबन्धों का अलग अलग रूप है। उनकी रचनाओं में पति-पत्नी के रिश्ते की गहराई का चित्रण तो है लेकिन ज़्यादातर रिश्तों में आए उलझन ही दिखाई देता है। परिवार सुख-चैन से जीने लायक एक संस्था है। परिवार का सुख और शांति तोड़ने में स्त्री और पुरुष बराबर हिस्सेदार है। एम.टी. के नायक आत्मनिंदा तो करते हैं लेकिन अपनी करतूतों की सफाई कभी भी देते नहीं। इसका उत्तम उदाहरण है 'कालम्' उपन्यास। इसकी नायिका सुमित्रा सेतु से बेहद प्यार करती है, लेकिन सेतु उसके प्यार को ठुकरा देते है। सेतु से सुमित्रा का कथन है मुझे ज़िन्दगी में सिर्फ एक व्यक्ति से ही प्यार है, वह सेतु से है । अपने मन की बात को खुलकर बताने वाली सुमित्रा एम.टी. की सशक्त स्त्री पात्रों में एक हैं। सुमित्रा यह चाहती थी कि सेतु अपने हृदय में उन्हें स्थान दें।

एम.टी. की रचनाओं में माँ और बहन सांत्वना की प्रतिमूर्ति के रूप में उपस्थित है। लेकिन पत्नी का ऐसा रूप नहीं दिखाते। उनकी स्त्री अवधारणा एकदम अलग है। इसलिए स्त्री के विभिन्न रूपों का चयन अलग ढंग से किया है।

उनके सभी स्त्री पात्रों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि स्त्री के भावों के अलग-अलग पक्ष को अभिव्यक्तकिया है। बीवी, पारुक्कुट्टी कुञ्ञोप्पोल, सुभद्रा, विमला, सुमित्रा, तंकमणी, जानम्मा, कुट्येडत्ति, ऑप्पोल पद्मम, सुमती वसुंधरा, रीत्ता मुकुंदन, मिसिस राजू, मिसिस परीख जैसे स्त्री पात्र यथार्थ की भावभूमि में तपकर आश्चर्यजनक भी बन गई हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रंडामूष़म -करंट बुक्स 1984
2. 'बन्धनं' एम डी को चुनी हुई कहानियाँ - करंट बुक्स 1968
3. 'मञ्ञु' पूर्णा पब्लिकेशन 1981

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम, केरल

समकालीन महिला लेखन में नारी

डॉ. जीना मेरी जोस

सन् 1980 से हिन्दी में समकालीन साहित्य का सृजन माना जाता है। लेकिन इसकी पृष्ठभूमि 7 वें दशक से निर्मित होने लगी थी। डॉ गोपाल राय ने भी 1980 के आस-पास को समकालीन परिप्रेक्ष्य की अवधि स्वीकार की है। पिछले 20-25 सालों में महिला लेखन अत्यंत समृद्ध हुआ। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ढेरों महिलाएँ लेखन में तत्पर होकर आगे आईं, लेकिन स्त्री लेखन के क्षेत्र में पर्याप्त बढ़ावा नही हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी उनके पिछडेपन के कई कारण थे। उर्मिला गुप्ता इसके संबन्ध में लिखती हैं - "शिक्षा की अपर्याप्तता, अध्ययन की सीमाओं, कार्यक्षेत्र में व्यापकता का अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्वों, समाज और परिवार के विरोध एवं वांछित प्रोत्साहन के अभाव के कारण स्त्रियाँ साहित्य-रचना में उतनी कृतकार्य नहीं हो सकीं।"[1] स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ इस पिछड़ेपन को बढ़ावा देने के लिए खड़ी थीं।

समकालीन युग की एक मुख्य विशेषता के रूप में स्त्रीवाद को लिया जा सकता है। महिला लेखन भी स्त्री वाद से प्रभावित है। इसलिए महिला-लेखन एक अलग विचारधारा एवं जीवन-दर्शन से प्रभावित है। पुरुष लेखकों की अपेक्षा भिन्न तरीके से महिला लेखिकाओं ने नारी-जीवन को देखा और परखा है। महिला लेखिकाओं की रचनाओं के उद्देश्य भी अलग हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - "यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है, स्त्रियों के संबंध में ही लिखती है और पुरुष जब साहित्य लिखता है, तब भी स्त्रियों के संबंध में लिखता है। दोनों में यह अन्तर होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य है अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय में और भी भ्रम पैदा कर लेना।"[2] इस दृष्टि से देखने पर स्त्री-पुरुष लेखन में भिन्नता द्रष्टव्य है। अतः महिला लेखन जैसी संज्ञा सार्थक एवं संगत है।

महिला लेखन से ही नारी के दर्द का यथार्थ अनुभव महसूस होता है क्योंकि महिला लेखिकाओं ने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की दर्दभरी मानसिकता और सामाजिक नियती को बडी गहराई से चित्रित किया है। नारी हृदय का जितना यथार्थ एवं सफल चित्रण लेखिकाओं ने किया है उतना पुरुष लेखक नहीं कर सके। वास्तविक बात यह है कि पुरुष लेखक अपनी कल्पनाओं के आधार पर नारी सम्बन्धित विभिन्न अनुभूतियों और भावनाओं का चित्रण करता है, किन्तु नारी अपने दैनिक जीवन से संबन्धित विभिन्न अनुभवों के बल पर इनका चित्रण करती है। कल्पना और यथार्थ में काफी अन्तर होता है। नारी पात्रों के चित्रण में भी यही अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी साहित्य के समकालीन परिप्रेक्ष्य पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि महत्वपूर्ण संख्या में आज महिला रचनाकार दिखाई देती हैं। आज महिलाओं द्वारा लिखित साहित्य को गम्भीर साहित्य के रूप में प्रतिष्ठा भी मिली है। डॉ. उर्मिला गुप्ता के शब्दों में - "यदि पुरुषों ने जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्रों का अनुशीलन करके अपनी रचनाओं में अपेक्षाकृत विविधता का समावेश कर लिया है तो लेखिकाओं ने भी सीमित कार्यक्षेत्रों के सूक्ष्म एवं सहज चित्र प्रस्तुत करके कथा साहित्य को स्पृहणीय विशेषताओं से विभूषित किया है।"[3]

यथार्थता का सच्चा चित्रण करना समकालीन महिला लेखिकाओं की एक प्रमुख विशेषता है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने समाज में स्त्री-पुरुष

अपने दैनिक जीवन में जैसे हैं वैसा ही उनका यथार्थ चित्रण सच्चाई के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। संवेदनशीलता और भावप्रवणता से समकालीन महिला लेखन सम्पन्न होता है। पुरुषों की विचारधारा बुद्धिपरक और स्त्रियों की हृदयपरक है। अतः इन लेखिकाओं की रचनाओं में हृदय को स्पर्श करने की क्षमता एवं मार्मिकता का विशेष समावेश संलग्न होता है। महिला लेखन के ज़रिए समाज में आवश्यक परिवर्तन लाना तथा साथ ही समाज में नारियों के प्रति जो शोषण और अत्याचार हो रहा है, इसकी ओर नारियों का ध्यान आकृष्ट करना भी लेखिकाओं का उद्देश्य है।

समकालीन महिला कथाकारों की कृतियाँ अपनी तार्किकता एवं संवेदनशीलता में बेहद पठनीय होती हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों में उत्पन्न नवीन स्थितियाँ, नैतिकता के नये प्रतिमान, कामकाजी नारियों की समस्याएँ, मूल्यों में आये हुए परिवर्तन, महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ, वर्तमान राजनीतिक विक्षेप आदि अनेक मुद्दों को इन लेखिकाओं ने अपनी कृतियों में उठायी हैं। वे सहनशीलता, पतिव्रता धर्म, नैतिकता, चारित्रिक-पवित्रता आदि स्त्री की पौराणिक मान्यताओं को नकारकर एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में उसे दिखाने का प्रयास कर रही हैं। दफ्तर में, समाज में या परिवार में नारी की अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए ये महिला लेखिकाएँ अपनी कलम चलाती हैं। आदिकाल से मानव के विकास-क्रम में नारी का महत्व निर्विवाद है। सृष्टि क्रम को अमर रखने के लिए पुरुष की अपेक्षा नारी पर अधिक ज़िम्मेदारी होती है। इसलिए नारी की भूमिका विशेष रूप से आदरणीय भी बन गई है। सब कहीं उसके महत्व की गाथायें मिलती हैं। भरत मुनी ने श्रृंगार-रस-विश्लेषण के सन्दर्भ में नारी के उदात्त और भव्य रूप पर प्रकाश डालते हुए "नारी को पूर्ण सौन्दर्य का उज्ज्वल नमूना घोषित किया है।"[4] "भर्तृहरि ने श्रृंगारशतक में 'नारी को कलाओं की सम्पूर्ण सृष्टि' मानी है।"[5] इन कथनों से नारी का विशेष महत्व साबित होता है।

साहित्य में नारी-जीवन की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः आदि साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया गया है। विष्णुपुराण में पुरुष को विष्णु, विचार, धैर्य, हठ, तर्क, दया आदि स्थान देते हुए स्त्री को लक्ष्मी, बुद्धि, भाषा, रचना, शांति, इच्छा, दान आदि से अलंकृत की गयी है। भारतीय संस्कृति की महत्ता, श्रेष्ठता और उसमें अंतर्भूत पारिवारिक कल्पना, आदि सब स्त्री पर निर्भर है। कहा भी गया है - 'गृहिणी गृहसुच्यते' अर्थात् स्नेह तथा स्वास्थ्यपूर्ण गृहस्थी का आधार स्त्री ही है। प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवीवर्माजी की दृष्टि में - "पुरुष समाज का न्याय हैं, स्त्री दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति और पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा।"[6]

नारी की विभिन्न भूमिकाओं से यह स्पष्ट होता है कि नारी का स्थान महत्वपूर्ण है। पुरुष का जीवन नारी के बिना अपूर्ण है। क्योंकि नारी ही पुरुष के जीवन में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की भावना को स्थापित करती है। ऐसा कहा जा सकता है कि कन्या होकर वह मानव के सत्यम् को पत्नी होकर उसके सुन्दरम् को और माता बनकर उसके शिवम् को एक साथ प्रकट करती है।

अब शिक्षा के प्रचार से नारी जाग्रत होने लगी है। फलस्वरूप चूल्हे से बाहर निकलकर भारत के राष्ट्रपति पद तक निभाने में भी स्त्री सक्षम हो गयी है। उपनिषद् का कथन है नारी हमारा पालन करती है, अतः उसका पालन करना हमारा कर्तव्य है। इसकी पूर्ति में साहित्य की भूमिका है। समकालीन महिला लेखन और लेखिकाओं का दृष्टिकोण अधिकतम नारी केन्द्रित है, फिर भी इनके विचारों व अभिव्यक्तियों में भिन्नता है।भिन्नताएँ होने पर भी नारी की उन्नति ही इनका लक्ष्य है पर मार्ग अलग-अलग हैं।लेखिकाओं

के अलग-अलग दृष्टिकोण ही महिला लेखन की विशेषता है।अधिकांश महिला लेखिकाओं की रचनाएँ दांपत्य एवं पारिवारिक जीवन पर आधारित हैं।प्राचीन संस्कारों एवं पूँजीवादी संस्कृतियों पर वे घोर विरोध प्रकट करती हैं।सन् 1950 से 1960 तक की लेखिकाओं का दृष्टिकोण पारिवारिक था।इनमें कृष्णा सोबती, मन्नूभण्डारी जैसी लेखिकाओं ने नारी-पुरुष संबन्धों को बहुआयामी दृष्टिकोणों से चित्रित किया है।सन् 1960 से 1970 तक की लेखिकाओं में प्रगतिशील विचारधारा एवं नारी स्वतंत्रता के विचार मिलते हैं।इन लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, शिवानी, मेहरून्निज़ा परवेज़, चन्द्रकांता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।सन् 1970 के बाद की लेखिकाओं में प्रगतिशील विचारधारा के साथ स्त्री स्वातंत्र्य की तीव्र इच्छा और उसे प्राप्त करने का अदम्य आग्रह मिलता है।

समाज में आये नवीन परिस्थितियों ने नारी को स्वयं के संबन्ध में विचार करने को सक्षम बनाया है।इन्होंने स्त्री-पुरुष समानता व अधिकार की बात उठाकर विवाह के नैतिक, धार्मिक संस्कारों पर विरोध प्रकट किया है। चित्रा मुद्‌गल, मृदुला गर्ग, दीप्ती खंडेलवाल, मालती जोशी, ममता कालिया, निरुपमा सोबती, मृणाल पांडे, गीतांजलि श्री आदि वर्तमान लेखिकाओं ने नारी चेतना को फिर से आगे बढने का मौका प्रदान किया है।उन्होंने जीवनसंघर्षों, आधुनिक-पारंपरिक संस्कारों के बीच चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्व, नौकरीपेशा नारी की समस्यायें, नारी साहसिकता एवं नारी मन की गहराई तक जाकर-परखकर उनकी समस्याओं का विश्लेषण करने की कोशिश की है। साठ के बाद के कथासाहित्य में स्त्री-विर्मश के नये आयाम सामने आते हैं। कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुडी' की पाशो, 'मित्रोमरजानी' की मित्रो, 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती, 'ऐ लडकी' की लडकी को अपनी राह खुद बनाने की, अपनी कामनाओं को व्यक्त करने की तथा विरोधी शक्तियों का दमन करने का सामर्थ्य एवं आत्मशक्ति है।कृष्णासोबती ने अपने वजूद एवं अधिकारों के प्रति सतर्क होनेवाली नारियों का चित्रण किया है।

प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में मारवाडी समाज के नारी-जीवन के अन्तर्विरोधों और अन्तः संघर्ष को प्रामाणिक एवं यथार्थ रूप में उभारा है। 'पीली आँधी' में चार पीढ़ियों की नारियों की व्यथा-कथा को निरूपित किया गया है। चित्राजी ने 'आवाँ' उपन्यास में मज़दूर की बेटी नमिता पांडे के संकल्पों, मोहभंग, संकल्पों से पलायन और स्त्री को देहमात्र माननेवाली पुरुष प्रवृत्तियों को उघाडकर समय और समाज के बृहत्तर संदर्भों के सामने प्रस्तुत किया है।मैत्रेयी पुष्पा ने गाँव की नारियों के दुःख-दर्द, उनकी दीन-हीन दशा को उजागर किया है तो मृदुला गर्ग ने उपन्यासों में स्त्री-जागरण और स्त्रीशक्ति को उजागर किया है।उनके प्रायः सभी उपन्यासों में स्त्री विमर्श के विभिन्न आयामों को देखा जा सकता है।नारी पात्रों की मानसिकता को प्रकट करने में लेखिका सक्षम रही है। साठोत्तरी रचनाओं में ग्रामीण स्त्रियों की विद्रोहिणी भूमिका के साथ महानगरीय नारीजीवन की कुंठा, आकांक्षा एवं आक्रोश भरी ज़िन्दगी का चित्रण भी मिलता है।

चित्रा मुद्‌गल , नासिरा शर्मा, ममता कालिया, मेहरुन्निज़ा परवेज़, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत आदि कुछ समकालीन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में आधुनिक भावबोध के विभिन्न सन्दर्भों को उभारा है।इन्होंने अपने लेखन में नवीनमूल्यों की खोज, संघर्ष, मनोविज्ञान, नारीअधिकार, विद्रोह एवं कुंठा जैसे अनेकानेक आधुनिक भावों को लिया है।इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में जीवन में आये विषम परिस्थितियों में संघर्ष या विद्रोह करने की अदम्य आकांक्षा को व्यक्त किया है।इसके फलस्वरूप आज की नारी अपने घर-परिवार संभालने के लिए सक्षम बन गयी है। अब लोगों की नई विचारधारा एवं नवीन उपलब्धियों ने स्त्री को समाज में काफी उँचा स्थान दिया है।

असल में महिला लेखन स्त्री समस्याओं पर केन्द्रित है। इसमें मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के अन्तर्विरोध और पुरुष -प्रधान समाज में अपनी पहचान बनाये रखने के लिए संघर्षरत नारी-जीवन की विविध आयामी तस्वीरें प्रस्तुत हुई हैं। इनके नारी पात्र अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए या अपनी मुक्ति अधिकार या खुशी की प्राप्ति के लिए साहसपूर्ण कदम उठाने का परिश्रम करती हैं। नारी को अपनी ज़िन्दगी की विशेष परिस्थिति में स्वतंत्र निर्णय लेने और उन्हें उत्थान की ओर बढ़ सकने में महिला लेखन के द्वारा प्रेरणा मिलती है। इस के लिए सारी लेखिकाओं ने भरसक कोशिश की है। नारी को समाज में जीने के लिए एक निश्चित नियमावली है, जिसका उल्लंघन करनेवाली नारी को समाज में जीना मुश्किल है।नारी को इससे मुक्ति पाने केलिए, सामाजिक अत्याचारों से बचने के लिए, सामाजिक शोषण के विरुद्ध लड़ने के लिए, लडकर अधिकार प्राप्त करने की प्रेरणा लेखिकायें देती हैं।

आजकल नारी स्वतंत्रता की पहली मांग यौन-स्वच्छंदता ही है।नारी होने के कारण ज़िन्दगी में कई यातनाओं से गुज़रते हुए जीनेवाली नारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। नारी अब भी पुरुष वर्चस्व के भीतर दब रही है। इसके फलस्वरूप धार्मिक सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं राजनीति के क्षेत्र में भी नारी अपना हक प्राप्त नहीं कर सकी है। अब स्त्री को वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस भी है। लेखिका मैत्रेयी पुष्पा जी का कहना है कि "स्त्रियों को कुछ सोचने की शक्ति दें, अधिकार दे.... बस उनकी उन्नति होगी।"[7]

इस प्रकार समकालीन महिला लेखिकाओं ने सुप्त पडी नारी चेतना को जगाने का काम अपनी रचनाओं द्वारा किया है। शैशव से लेकर युवावस्था तक नारी में निरन्तर होनेवाली हीनताग्रंथि और पुरुषों में होनेवाली श्रेष्ठता ग्रंथि का शिकार नारी ही है। इसी सामाजिक भेद-भाव को यहाँ से हटाना महिला लेखन का मुख्य उद्देश्य है। जब मानव मनोविज्ञान के बजाय पुरुष मनोविज्ञान और स्त्री मनोविज्ञान की अलग-अलग दृष्टि होती तो नारी मानवी कैसे होगी? इसलिए लेखिकाओं का विचार है कि नारी को स्वतंत्र हैसियत प्राप्त करने के लिए उसे लडना चाहिए ।नारी का पथप्रदर्शक स्वयं नारी को होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उर्मिला गुप्ता : स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ, पृ. 10
2. कमला : अक्टूबर 1939, पृ. 3
3. डॉ. उर्मिला गुप्ता : हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योगदान, पृ. 401
4. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, पृ. 298
5. भर्तृहरी : श्रृंगार शतक, पृ. 59
6. डॉ. रेवा कुल्कर्णी : हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ. 39
7. संग्रथन, नवंबर 2007, पृ. 22

असिस्टेंट प्रोफेसर
निर्मला कॉलेज, मुवाट्टुपुषा

नारी शोषण के आईने में 'संस्कार को नमस्कार'

शिल्पा.एस.एल

हिंदी नाट्य साहित्य में महिला लेखन की जो सशक्त धारा प्रवाहित हो रही है उसमें कुसुम कुमार का नाम अग्रणीय है। साहित्य के क्षेत्र में उनकी सर्जनात्मक क्षमता किसी एक विधा तक सीमित नहीं रही, क्योंकि उनकी प्रतिभा नित्य नए की तलाश में अग्रसर है। उनका लेखन वैविध्यपूर्ण है। समाज में जो देखा, महसूस किया, उसे शब्द का रूप देकर पूरी यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है। वे एक प्रमुख नाटककार होने के साथ-साथ उपन्यासकार, कवयित्री, अनुवादक आदि भी है। उन्होंने हिंदी नाट्य रंगमंच को नया आयाम देने की कोशिश की है। कुसुम जी ने अब तक आठ मौलिक नाटकों की रचना की है। वे हैं - ओम क्रांति क्रांति, संस्कार को नमस्कार, दिल्ली ऊँचा सुनी है, सुनो शेफाली, पवन चतुर्वेदी की डायरी, लश्कर चौक, रावणलीला, प्रश्नकाल आदि। इन नाटकों में लेखिका ने राजनीतिक विसंगतियाँ, नारी शोषण, सामाजिक अव्यवस्था भ्रष्टाचार जैसे अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया है।

'संस्कार को नमस्कार' सन् 1982 में प्रकाशित कुसुम कुमार का बहुचर्चित नाटक है। नाटक एक महिला आश्रम को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जिसमें एक राजनीतिक नेता द्वारा आश्रम में अभय प्राप्त लडकियों का शोषण करने वाली प्रवृत्ति को उजागर किया गया है।

नाटक की शुरुआत एक महिला आश्रम से होती है। इस महिला आश्रम में समाज की शोषित लड़कियाँ ही आश्रय पा लेती हैं। कामोबेन नाम की महिला आश्रम चलाती है। नाटक का नायक संस्कारचंद है, जो महिला आश्रम के अध्यक्ष है और समाज सेवक भी। महिला आश्रम का निरीक्षण करने के लिए संस्कार आता है। संस्कार का स्वागत करने के लिए आश्रम की लडकियों को सज धजकर रहने का आदेश मिलता है। उन्हें अच्छे कपड़े देते हैं और आँखों में काजल लगाने को कहते हैं। कामोबेन लड़कियों से कहती है "दीदी तुम्हीं लोगों के फ़ायदे ही सोचते है। मालूम है इस बार आश्रम के लिए मुझे और अधिक सुविधाएँ माँगनी हैं संस्कार भाई से...? ज्यादा से ज्यादा ग्रांट लेनी है इस बार उनसे... सोचो तो ज़रा कि तुम्हारा यह खाना, पहनना, ओढ़ना कैसा चल रहा है? तुम्हारे दो तार सूत कात लेने से तो इतना पैसा नहीं आता न!"[1]

कामोबेन अपने फ़ायदे के लिए लड़कियों का इस्तेमाल करती है। बेसहारे लड़कियों को उसका आदेश स्वीकारना पड़ता है। संस्कार चंद के आने के बाद लड़कियों को देखकर संस्कार खुश हो जाता है। बाद में वह आश्रम का निरीक्षण करके नज़र आता है। निरीक्षण करते समय भी संस्कारचंद की नज़र वहाँ की लडकियों पर टिकी हुई है। आश्रम में आते ही संस्कार दमयंती के बारे में पूछता है, जिसने पिछली बार उनकी सेवा की थी। 'कामोबेन : लेकिन वह तो चली गयी यहाँ से...

संस्कार : कब? किसके साथ?

कामोबेन : पिछली बार जब एम.एल.ए. साब आए थे, उसने अपने साथ। आजकल वह उन्हीं के साथ रह रही है।

संस्कार : कहाँ?

कामोबेन : मेरठ, वहाँ एम.एल.ए. साब के साथ

रहकर बडी खुश है, आजकल नौकरी के साथ कोई ट्रेनिंग भी ले रही है - एम.एल.ए. साब उसे अपनी बेटी की तरह मानते है।

संस्कार : हम भी उसे अपनी बेटी की तरह मान लेते।

कामोबेन : वे उसे दिन-रात अपने साथ रखते हैं।

संस्कार : हम भी उसे दिन रात अपने साथ ही रखते।

कामोबेन : उनका भविष्य का प्रश्न था संस्कार भाई और फिर एम.एल.ए. साब की अवज्ञा मैं कैसा कर सकती हूँ।"[2]

महिला आश्रम की संचालिका स्वयं वहाँ की लडकियों को दूसरों के साथ भेजती है। आश्रम का अध्यक्ष भी कुछ नहीं कहती बल्कि उनका साथ देता है। जिन अधिकारियों को नारियों की रक्षा करनी है, वे ही उनके भक्षक बन जाते हैं। "आश्रम की कोई भी लड़की अपने नारीत्व को खो देने को सहमत नहीं। वे सब कामोबेन की आज्ञा और मार-लपेट के डर से इन पुरुषों की कामाग्नि में धधक जाती है।"[3]

कामोबेन संस्कारचंद को साक्षात भगवान ही मान लेती है। अतः वह हमेशा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का विशेष ध्यान रखती है। इसी कारण से ही कामोबेन संस्कारचंद की प्रिय रही है। कामोबेन स्वयं एक व्यभिचारी है और अन्य नारियों को भी इस रास्ते पर लाने की कोशिश करती है। इस नारी निकेतन का निरीक्षण करने के लिए जो भी समाज सुधारक आता है, उनका एकमात्र लक्ष्य यहाँ की बेचारी एवं विवश नारियों के साथ अपनी काम-प्यास बुझाना ही है। कामोबेन आश्रम की लडकियों की मज़बूरियाँ का फायदा उठाकर उन्हें गलत कार्य करने के लिए विवश कराती है। संस्कार से फायदा उठाने के लिए कामोबेन संस्कार की सेवा करने के लिए लडकियों को भेजती हैं और उनकी प्रशंसा करती हुए कहती है - "सो तो है संस्कारभाई.... थकना तो हम जैसा लोगों का काम है... आप जैसे भगवान है... वह तो कभी नहीं थकते।"[4]

आश्रम की दयनीय स्थिति का चित्रण पांचाली की एक हरकत से पता चलता है। पांचाली आश्रम की एक आश्रित लडकी है। लेकिन वह आश्रम से भागना चाहती है। वह खिडकी से कूदती है लेकिन कामोबेन उसको पकडकर उसके हाथ रस्सी से बाँधकर संस्कार के पास घसीट ले जाती है। तभी संस्कार को पता चलता है कि यहाँ आने के पूर्व दो बार पांचाली का बलात्कार हो चुका है एक बार पुलिस अधिकारी द्वारा ही। पाँचाली जैसी अनेक लडकियाँ महिला आश्रम से आश्रय पा लेती हैं। लेकिन उसको वहाँ भी शोषण का शिकार बनना पडता है।

संस्कार विद्या और शक्ति से, जो आश्रम की लडकियाँ हैं पैर दबाने को कहता है और इधर-उधर की बातें भी करता है। बातों से संस्कार को पता चलता है कि विद्या की उम्र अठारह है और शक्ति को इस चैत में पंद्रह पूरे होंगे। तब संस्कार विद्या को जाने के लिए कहता है और शक्ति को रुकने के लिए। बाद में संस्कार शक्ति को बातों में बहलाता है और दवाई के नाम पर शराब पिलाता है और उसका बलात्कार करता है। दूसरे दिन संस्कार वहाँ से चला जाता है और शक्ति रोती रहती है। नाटक के अंत में सूत्रधार उद्घोषणा करता है - "प्यारे भाइयो और बहनो, नाटक का मंगलाचरण पूरा हो गया। इस नाटक का नहीं, उस नाटक का ... उस नाटक का याने कि उस विशाल नाटक का, जिसके हर कोण से स्त्री का शोषण होता है।"

भारतीय समाज में पुरुष द्वारा नारी का शोषण व पीड़न सदियों से चला आ रहा है। आज नारी द्वारा नारी का उत्पीड़न भी नित्य की घटना बन गयी है। कामोबेन इसका उदाहरण है। कामोबेन

स्वयं नारी होकर भी नारी का जीवन बर्बाद करती है। कामोबेन आश्रम की लडकियों से नौकरों जैसा व्यवहार करती है। आज के समाज में कामोबेन जैसी संचालिकाएँ महिला आश्रमों का शाप है। इन्हीं द्‌वारा आश्रित नारियों का शारीरिक एवं मानसिक शोषण करवाना, सामाजिक यथार्थ है। इनके खिलाफ जिन लोगों को आवाज़ उठाना चाहिए, वही इन्हीं के साथ देता है।

महिला आश्रम नारी का अभय स्थान है। हम सब समझते हैं कि महिला आश्रम की नारियाँ सुखमय जीवन बिताती हैं। लेकिन वास्तविकता इससे कोसों दूर है। यहाँ की नारियों को दिन-रात कठिन मेहनत करने के साथ-साथ अपना नारीत्व को भी खोना पड़ता है। अपने नारीत्व को खो देने को कोई सहमत नहीं होता। लेकिन वे परिस्थितियों से समझौता करने के लिए विवश हो जाती हैं। इस प्रकार नाटक में नारी उत्थान के नाम पर नारी शोषण का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समग्र नाटक-कुसुम कुमार - पृ.सं. : 177
2. समग्र नाटक-कुसुम कुमार - पृ. सं. 190
3. हिंदी महिला नाट्य लेखन के सामाजिक सरोकार - डॉ.मिनी जोर्ज - पृ. 150
4. समग्र नाटक - कुसुम कुमार - पृ. 152

शोध छात्रा, यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम
मो: 9567011979

समाज में शांतिपूर्ण परिवर्तन

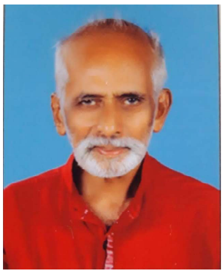

समाज में वर्गवाद बढ़ाने और संघर्ष और बल के प्रयोग का श्रीनारायण गुरु ने समर्थन नहीं किया। उन्होंने शांतिपूर्ण औ समझदारी और भाईचारे पर आधारित एक सामाजिक परिवर्तन चाहा। आज की विषम परिस्थिति में उग्रवाद, आक्रमण, विनाश विस्फोट, फूट डालना, हथियारों और धर्मों द्‌वारा तबाही, आक्रामक राजनीति आदि का भी उन्होंने समर्थन नहीं किया। अहिंसा, प्रेम, समझदारी, सामाजिक सौहार्द आदि पर आधारित एक शांतिपूर्ण परिवर्तन के वे समर्थक थे। स्वयं उन्होंने सामाजिक समता, न्याय, युगों से वंचित मानवाधिकार आदि को पुनःस्थापित कने के लिए शांतिपूर्ण आंदोलन चलाया। जाति या धर्म के आधार पर किसी की उपेक्षा को उन्होंने न्याय संगत नहीं माना। अपने द्‌वारा स्थापित संस्थाओं, मंदिरों और पाठशालाओं में सभी जाति एवं सभी धर्म के लोगों को उन्होंने सम्मिलित किया जो गाँधीजी आदि के लिए भी प्रेरक बना। 'अन्य धर्मों के बारे में जानना और अपने धर्म के बारे में दूसरों को जताना' शांतिपूर्ण संवाद और शांतिपूर्ण धार्मिक आचरण एवं उदारता को उन्होंने धार्मिक सौहार्द के लिए आवश्यक माना। उनका यह प्रस्ताव भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं कि धर्म के आधार पर लड़ें तो वह कभी समाप्त नहीं होगा और उस से किसी को कोई उपलब्धि नहीं होगी। बाहरी आचरणों की भिन्नता पर नहीं, सभी धर्मों के परम तत्वों और लक्ष्यों की एकता पर बल देना चाहिए। मनुष्य सबसे बड़ा प्रतिभास है और सभी धर्म केवल मनुष्य के कल्याण या भलाई के लिए हैं, इसलिए सकारात्मक और निर्माणात्मक कार्य करें, जिससे मानव की प्रगति हो।

डॉ.जी. गोपीनाथन द्‌वारा रचित 'श्रीनारायण गुरु : आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत' शीर्षक ग्रंथ से उद्धृत। पुस्तक का प्रकाशक है ज्ञान गंगा, नई दिल्ली - 110 002

छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों में साक्षरता प्रतिरूप

खेमचंद

शोध सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों में साक्षरता प्रतिरूप से संबंधित है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्तिमें ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं व्यावहारिक परिवर्तन किया जा सकता है। किसी भी क्षेत्र के समुचित विकास के लिए अधिकतर लोगों को कम से कम उस स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य है, जिससे वे लिखे हुए निर्देश को समझकर निर्णय ले सके। अध्ययन क्षेत्र में 07 विकासखण्ड (अम्बागढ़ चैकी, मोहला, मानपुर, बालोद, डौण्डी लोहारा, डौण्डी एवं गुरूर) से कुल 14 गाँव का यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से चयन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता दर 75.91 प्रतिशत जिसमें पुरुषों का प्रतिशत 83.02 तथा महिलाओं का प्रतिशत 68.82 है। सबसे अधिक साक्षरता मोहला विकासखण्ड में 81.61 प्रतिशत है तथा न्यूनतम साक्षरता डौण्डी-लोहारा विकासखण्ड में 72.39 प्रतिशत है। राष्ट्रीय स्तर की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। निर्धनता को दूर करके, शिक्षा के प्रति जागरूक करके महिला एवं पुरुष साक्षरता में वृद्धि की जा सकती है।

शब्द कुंजी - साक्षरता, शिक्षा, प्रतिरूप, जनजाति, विकासखण्ड, जनसंख्या ।

प्रस्तावना - साक्षरता प्रतिरूप समाज के सामाजिक-आर्थिक विकास की गति का सूचक है। अतः एक जनसंख्या भूगोलविद के लिये साक्षरता प्रवृति एवं प्रारूप का विश्लेषण अति महत्वपूर्ण है। पढने और लिखने की कला के विकास से पूर्व सांस्कृतिक आवस्था में वर्गीकृत किया जा सकता है। साक्षरता पूर्व अवस्था से साक्षरता अवस्था में परिवर्तन 4000 ई. पूर्व हुआ जो चित्रकारी विद्या से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे विधा में पहुँचा (गोल्डन 1968, पृ. 412)। साक्षरता का गरीबी उन्मूलन, मानासिक एकांकीपन का समाप्तीकरण, शांतिपूर्ण तथा भाई-बन्धु वाले अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्माण और जनसांख्यिकीय प्रक्रिया की स्वतंत्र क्रियाशीलता में भारी महत्व है (चान्दना 1980, पृ. 98)। साक्षरता की संकल्पना का तात्पर्य न्यूनतम साक्षरता विपूर्णता से है जो एक देश से दूसरे देश में भिन्न है । निम्न साक्षरता स्तर की विभिन्नता मौखिक रूप से विचार विनिमय से लेकर विभिन्न प्रकार की परिकल्पनाओं तक मानी जाती है। कभी-कभी पाठशाला शिक्षा की अवधि के आधार पर साक्षरता व असाक्षरता का निवारण किया जाता है (ट्रिवार्था 1969, पृ. 131)। सन् 1961 की हांगकाग जनगणना में कोई भी व्यक्ति जो यह कहता था कि वह कोई एक भाषा पढ़ सकता है, उसके लिये यह अनुमान कर लिया गया कि वह लिख भी सकता है और उसे साक्षर माना गया। प्रगणक को दी गई सूचना के आधार पर साक्षरता दर उन्मत तो अवश्य होगी पर जवाब देने वालों को अधिक कठिन प्रश्नों के उत्तर देने में उलझाना भी उचित नहीं समझा गया (डेविस, 1951, पृ. 151)।

साक्षरता जनसंख्या में प्रगतिशील परिवर्तन करती है। शिक्षा के स्तर से मनुष्य का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर प्रभावित होता है तथा मनुष्य के स्तर से समुदाय एवं राष्ट्र का स्तर प्रभावित होता है (गोसल, 1967, पृ. 3)। इस प्रकार शिक्षा हमें अंधकार, रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा अज्ञान से मुक्ति दिलाती है। छत्तीसगढ़ जनजाति बहुल्य राज्य है और 30.6 प्रतिशत भाग जनसंख्या जनजाति की है। जनगणना 2011 के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य कुल जनजाति जनसंख्या

78,22,902 है, लिंगानुपात 1020 एवं साक्षरता दर 50.11 प्रतिशत है, भारत में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत तथा छत्तीसगढ़ में 71.04 प्रतिशत है एवं अध्ययन क्षेत्र का कुल जनसंख्या 9,05,360 है।

अध्ययन का उद्देश्य-प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों की साक्षरता प्रतिरूप का विश्लेषण तथा सुझाव प्रस्तुत करना है।

अध्ययन क्षेत्र- अध्ययन क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि भौगोलिक दृष्टि से शिवनाथ बेसिन का दक्षिणी भाग है। यह उच्चभूमि 20007 से 21006 उत्तरी अक्षांश एवं 80024 से 81038 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। क्षेत्र का विस्तार 5517.17 वर्ग किलोमीटर है। इस उच्चभूमि की समुद्र सतह से औसत उँचाई 500 मीटर तथा वन क्षेत्र 40.67 प्रतिशत है। महानदी अपवाह तंत्र तथा गोदावरी तंत्र प्रमुख है। यह छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग एवं राजनांदगाँव जिले के दक्षिण में स्थिति है। जिसके अन्तर्गत सात विकासखण्ड शामिल है, इसमें राजनांदगाँव जिले के तीन विकासखण्ड- अम्बागढ़ चैकी, मोहला, मानपुर, तथा बालोद जिले के चार विकासखण्ड-डौण्डी, डौण्डी लोहारा, बालोद एवं गुरूर सम्मिलित है। 2011 जनगणना अनुसार अध्ययन क्षेत्र का साक्षरता दर 69.16 प्रतिशत है, जिसमें अनुसूचित जनजाति का 62.69 प्रतिशत एवं अनुसूचित जाति का 56.27 प्रतिशत है।

आँकड़ों के स्त्रोत एवं विधि तंत्र- प्रस्तुत शोध का अध्ययन प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन हेतु सात विकासखण्डों से 2-2 गाँव का यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से कुल 14 गाँव का चयन किया गया है। तथा प्रतिदर्श के आकार को सांख्यिकीय विधि द्वारा परीक्षण किया गया है। चयनित गाँव से 30 प्रतिशत परिवारों से परिवारिक-सामाजिक एवं आर्थिक संबंधी आँकड़ा साक्षत्कार अनुसूची से प्राप्त किया गया है। अध्ययन क्षेत्र से 906 परिवारों से सूचना एकत्र किया गया है।

चयनित जनजातीय परिवारों में साक्षरता प्रतिरूप- शिक्षा मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य होने के साथ-साथ वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का एक उपयोगी साधन भी है (नरेन्द्र कुमार एवं विजय बहुगुणा, 2016)। मध्यप्रदेश राज्य के छत्तीसगढ क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन के साथ-साथ शैक्षिक विकास के स्तर के स्थानिक पैटर्न का विश्लेषण किया है (एम.पी. गुप्ता एवं सरला शर्मा, 1998)। 2011 जनगणना अनुसार अध्ययन क्षेत्र का साक्षरता दर 69.16 प्रतिशत है, जिसमें अनुसूचित जनजाति का 62.69 प्रतिशत एवं अनुसूचित जाति का 56.27 प्रतिशत है। जनजाति महिलाओं के पारम्परिक रुढ़िवादी, सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं तथा जातिगत बंधनों में जकड़ी होने के कारण उनमें शिक्षा के प्रति असीम उदासीनता पायी जाती है (दवे माधवी एवं सरला शर्मा, 2000)। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में सर्वेक्षित परिवारों की कुल संख्या 906 है तथा कुल जनसंख्या 3867 है, जिसमें पुरूष 1970 तथा महिला 1897 है। उसी प्रकार जनजाति परिवारों की कुल संख्या 333 है तथा कुल जनसंख्या 1474 है, जिसमें पुरुष 737 तथा महिला 737 है। महिला शिक्षा एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जो समाज में महिला को भाग्यवादी, अस्तित्वहीन, धर्मभीरु एवं आश्रिता मानने की पुरानी परम्परा को दूर कर उसमें जागरु कता एवं आत्मविश्वास भर सकती है (अग्रवाल, पी. सी एवं सरला शर्मा, 1989)। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि के सर्वेक्षित जनजातीय परिवारों में शैक्षणिक स्तर के अंतर्गत निरक्षर में 24.09 प्रतिशत, मात्र साक्षर 2.83 प्रतिशत, प्राथमिक स्तर 18.44 प्रतिशत, पूर्व माध्यमिक स्तर 18.64 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर 11.84 प्रतिशत, उच्चतर माध्यमिक स्तर 12.25 प्रतिशत, तथा उच्च शिक्षा स्तर में 11.91 प्रतिशत है। साक्षरता का वितरण

सबसे अधिकतम मोहला विकासखण्ड में 81.61 प्रतिशत है। तथा न्यूनतम साक्षरता डौण्डी-लोहारा विकासखण्ड 72.39 प्रतिशत है। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में साक्षरता दर 75.91 प्रतिशत जिसमें पुरुषों का प्रतिशत 83.02 तथा महिलाओं का प्रतिशत 68.82 है । जिसका प्रमुख कारण पुरुषों के समान महिला शिक्षा को महत्व न देना, परिवारिक कार्यो में संलग्न आदि कारणों से पुरूषों के तुलना में महिलाओं के साक्षरता दर कम है। फिर भी राष्ट्रीय औसत साक्षरता दर से अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता दर अधिक है। छत्तीसगढ राज्य में महिलाओं के लिये साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन के साथ शैक्षिक विकास के स्तर के क्षेत्रीय पैटर्न का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है, राज्य के सोलह जिलों को समृध्द, क्षमतावान, विकासशील व्यथित और संकटग्रस्त चार श्रेणियों में बाटा गया है (सरला शर्मा एवं अनिमा बनर्जी, 2007)।

साक्षरता प्रतिरुप- दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि के सर्वेक्षित जनजातीय परिवारों में साक्षरता प्रतिरूप को समझने के लिए तीन श्रेणियो में विभक्त किया गया है-

1. उच्च साक्षरता (उ 80 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत तीन विकासखण्ड मोहला, बालोद एवं गुरूर शामिल है। इसके अन्तर्गत 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या साक्षर है। जिसका मुख्य कारण भौगोलिक कारक, शैक्षणिक संस्थाओं की अधिकता, जनता में जागरूकता का होना है।

2. मध्यम साक्षरता (75 - 80 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से एक मात्र विकासखंड अम्बागढ़ चैकी शामिल है। इसमें 75 से 80 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है। जिसका कारण विकासखण्ड में शिक्षित परिवार का होना, निरक्षरता की कमी तथा यातायात की सुविधा है।

3. निम्न साक्षरता (75 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत तीन विकासखण्ड मानपुर, डौण्डी लोहारा एवं डौण्डी विकासखण्ड शामिल है। इसमें 75 प्रतिशत से कम जनसंख्या साक्षर है। जिसका कारण कम जागरूकता का होना, गरीबी तथा आर्थिक कारकों का प्रभाव एवं भौगोलिक कारक तथा निरक्षरता की अधिकता है ।

साक्षरता विभेदन - विकासशील राष्ट्रों में व्यापक गरीबी, स्त्रियों की साक्षरता प्रसार एवं विकास में महानतम अवरोध है। ऐसी गरीबी में स्त्रियों की शिक्षा की अपेक्षा पुरुषों की शिक्षा को प्रधानता प्रदान की जाती है। इसी प्रकार आर्थिक लाभपरक कार्यो में स्त्रियों का योगदान भी कम है। स्त्रियाँ घरेलू छोटे-मोटे कार्यों में संलग्न होती है (कृष्ण और श्याम, 1973, पृ. 204)। क्षेत्र में साक्षरता विभेदन का अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत पुरुषों का प्रतिशत् 83.02 तथा महिलाओं का प्रतिशत् 68.82 है। कुछ व्यवसायों के लिए साक्षरता अनिवार्य है तथा कुछ व्यावसायों को निरक्षर लोग भी कर सकते है। जैसे-कृषि व्यवसाय में संलग्न काश्तकार, खेतिहार मजदूर, पशु पालन तथा उत्खनन, श्रम और निर्माण में लगे लोग निरक्षर होने पर भी कार्य कर सकते है। इसके विपरीत एक निरक्षर अथवा अशिक्षित व्यक्ति के लिये व्यापार, वाणिज्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, सैन्य सेवा कार्यो में प्रविष्ट होना सम्भव नही है। (गोल्डन, 1968, पृ. 416)।

निष्कर्ष : छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता प्रतिरूप अध्ययन से स्पष्ट है कि साक्षरता स्वरूप में अन्तर विद्यमान है। अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता स्तर 75.91 प्रतिशत राष्ट्रीय साक्षरता 74.04 प्रतिशत स्तर से अधिक है। क्षेत्र में सबसे अधिकतम साक्षरता दर मोहला 81.61 प्रतिशत तथा न्यूनतम साक्षरता दर डौण्डी-लोहारा विकासखण्ड 72.39 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 83.02 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता दर 68.82 प्रतिशत से अधिक है। स्त्री-पुरूषों की साक्षरता के अन्तर को कम करने के लिए ताकि दोनों को मंच पर साथ लाने

की आवश्यकता है। इस अन्तर को दूर केवल सही एवं उचित ढंग से शिक्षित समाज ही कर सकता है। केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों जैसे-साक्षरता मिशन, सर्व साक्षरता अभियान, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, राजीव गांधी शिक्षा मिशन, आदि के अंतर्गत स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता अभियान चलाये जाने की आवश्यकता है।

सुझाव : अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता विषमता को दूर करने के लिए सरकार का शिक्षा के प्रति लगाव, शिक्षकों से शैक्षणिक कार्यों के अलावा प्रशासनिक कार्यभार कम करके, शिक्षा का प्रचार-प्रसार करके, अनिवार्य शिक्षा, योग्य शिक्षकों को नियुक्त करना, शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करना, अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों एवं वर्गों को प्राथमिकता देना, सामाजिक बुराईयों को दूर करके, निर्धन वर्ग में शिक्षा के निःशुल्क व्यवस्था के साथ-साथ पुस्तक, यूनिफार्म, छात्रवृत्ति की व्यवस्था, निर्धनता को दूर करके, आदि उपायों के माध्यम से शिक्षा एवं साक्षरता में वृद्धि किया जा सकता है, जिससे किसी देश व राज्य में शिक्षा का विकास होगा।

सन्दर्भ सूची :

1. अग्रवाल पी. सी. एवं सरला शर्मा, 1989 छत्तीसगढ बेसिन में महिला साक्षरता का स्थानिक विश्लेषण जियो सांइस जनरल. अंक. 4. पृष्ट संख्या- 1-13.
2. कृष्ण और श्यामट 1973ई.भारत में महिला साक्षरता की प्रगति पर साक्षरता स्थानिक परिप्रेक्ष्य; 1907-71 प्रशांत दृष्टिकोण, मूल्य. 14.
3. कुमार एन. एवं विजय बहुगुणा, 2016, साक्षरता का स्थानिक वितरण प्रतिरूप उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद सहारनपुर का एक प्रतीक अध्ययन रिव्यू ऑफ रिर्सच. अंक. 6. दिसंबर.
4. गुप्ता एम. पी. एवं सरला शर्मा, 1998. अनुसूचित जनजातियों में शैक्षिक विकास एनल्स ऑफ द नेशनल एसोसिएशन ऑफ जियोग्राफर्स भारत, मूल्य-18, पेज सं. 110-120. दिसंबर.
5. गोल्डन हिल्डा, एच. 1969, साक्षरता,अंतर्राष्ट्रीय इनसाइकलोपीडिया सामाजिक विज्ञान मूल्य. 09, मैकमिलन कंपनी और मुक्त प्रेस.
6. गोसल, जी. एस.1967, भारत में ग्रामीण साक्षरता के क्षेत्रीय पहलू, भारतीय भूगोलवेत्ता, परिषद मूल्य. 04.
7. चांदना, आर. सी. अन्य. 1980, जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स. नई दिल्ली।
8. ट्रिवार्था, जी. टी. 1969, जनसंख्या भूगोल, विश्व प्रतिरूप, जॉनविली और सन्स, न्यूयॉर्क।
9. जिला सांख्यिकी पुस्तिका-राजनांदगाँव एवं बालोद. 2018-2020.
10. डेविस, किंग्सले, 1951, भारत एवं पाकिस्तान का जनसंख्या, प्रिन्सेन्ट विश्वविद्यालय, प्रेस, प्रिन्सेन्ट.
11. दवे एम, एवं सरला शर्मा, 2000, मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजाति महिला साक्षरता का स्थानिक प्रतिरूप उत्तर भारत भूगोल पत्रिका. अंक. 36. जून - दिसंबर.
12. शर्मा सरला एवं अनिमा बनर्जी, 2007. छत्तीसगढ (भारत) में महिला शिक्षा में क्षेत्रीय विषमताएँ द रिसर्च जर्नल ऑफ जियोग्राफर्स एसोसिएशन, गोवा. मूल्य-4. पेज सं. 68-74. नं. 1. दिसंबर.
13. www.cences2011.com.in.

शोध निदेशक : डॉ.टिके सिंह
ज्योग्रफी विभाग
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

शोधार्थी : भूगोल विज्ञान में एस.ओ.एस
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर, Mob. 8770917591

पर्यावरण असंतुलन : ''जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के संदर्भ में

लक्ष्मी.के.एस

पृथ्वी पर मानव अथवा समस्त प्राणिजगत जिस वातावरण में जन्म लेते हैं, पलते-बढ़ते हैं या विकास प्राप्त करते हैं, हम उसे ही पर्यावरण या प्रकृति कहते हैं। जन सामान्य के लिए जो प्रकृति है, उसे विज्ञान की भाषा में पर्यावरण कहा जाता है। पर्यावरण का अर्थ परीआवरण यानी हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएँ हैं, जो हमारे जीवन को प्रभावित करती है, वे सभी पर्यावरण बनाती हैं। इसके अंतर्गत हमारे चारों ओर का परिवेश अर्थात वनस्पति प्राकृतिक पदार्थ, जीव-जगत आदि सब कुछ आते हैं। इन सब के बीच परस्पर सामंजस्य तथा संतुलन की स्थिति पर्यावरण को संतुलित रखने में सहायता करती है। इनमें प्रकृति के साथ मनुष्य का अटूट संबंध चिरकाल से रहा है। आरंभ में तो मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुसार जीवन यापन करता था, लेकिन आधुनिकता के प्रवेश से ही प्रकृति और मनुष्य के बीच की आत्मीयता टूटने लगी। इसका मुख्य कारण मनुष्य की बाज़ारवादी, पूँजीवादी, भौतिकवादी तथा उपभोक्तावादी मानसिकता है। इन स्वार्थपरक मानसिकता की ओर अग्रसर होने वाले मनुष्य प्रकृति पर प्रहार करने या आक्रमण करने लगें। इसके फलस्वरूप वनों का नाश करना, पेड़ों को काटना, जानवरों को मारना, बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण करना, नदियों के जल को जहरीला करना, वायु, मिट्टी आदि को प्रदूषित करना, भू-संतुलन को बिगाड़ना आदि के कारण आज पर्यावरण संतुलन बिगड़ गया है। मानव अपने विकास के लिए पर्यावरण के सारे संसाधनों का उपयोग करता है, लेकिन इन संसाधनों का उपयोग हम किस रूप में करते हैं? कितनी गहराई से करते हैं? और कहाँ-कहाँ करते है? यह समाज में कितने उपयोगी सिद्ध होंगे? यह सारे प्रश्न पर्यावरण असंतुलन से जुड़े हुए हैं। सच कहें तो मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों को अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बना रहा है। आवश्यकता से अधिक इन संसाधनों के दोहन से पर्यावरण असंतुलन की स्थिति पैदा हो रही है। अपने अल्पकालीन लाभ के लिए मानव प्राकृतिक संपदाओं का दोहन करता रहा है, उसने कभी नहीं सोचा कि इससे वातावरण में अवांछनीय परिवर्तन आ जाएगा। ग्लोबल वार्मिंग, ग्रीन हाउस प्रभाव, गतवर्षों में तेजाबी वर्षा, विश्व का तापमान, ओजोन परतों का अधः पतन, विस्तृत मरुस्थलीकरण तथा अनेक प्रजातियों का विलुप्तीकरण जैसी भयावह समस्याओं का पूरे विश्व को सामना करना पड़ता है। यह प्रकृति के साथ-साथ सर्वचराचरों के अस्तित्व को नजरअंदाज करते हुऐ सिर्फ अपनी प्रगति के प्रति चिंतित मानव के हस्तक्षेप से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। अतः आज के संकट की घड़ी में पर्यावरण असंतुलन का मूल्यांकन बहुत ही जरूरी है, ताकि इसका लाभ समाज को मिल सके।

पर्यावरण असंतुलन आज के समय में प्रासंगिक है और इसकी साहित्य जगत में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। सच कहें तो यह आज के सभी मानवीय मुद्दों में एक बहुचर्चित तथा समस्याप्रधान विषय है। यह वैज्ञानिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि साहित्यिक जगत में भी चर्चित हो रहा है, और इसलिए यह विषय हिंदी साहित्य में प्रासंगिक है। इसका पुनर्पाठ करने की सख्त ज़रूरत है। समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण का असंतुलन पर काफी चर्चा हो रही है। हिंदी की रचनाओं में लगभग सन् 1980 ई. से ही पर्यावरण की चर्चा शुरु हो गई थी। इसके फलस्वरूप मानव राशि के अस्तित्व पर प्रभाव डालने वाले प्रबल समस्या के रूप में साहित्य में पर्यावरण विज्ञान का उदय हुआ है। पर्यावरण विज्ञान में 'पर्यावरण संतुलन' की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि 'पर्यावरण संतुलन' विभिन्न जैविक-अजैविक प्राणियों एवं उनके प्राकृतिक वातावरण के बीच के संबंधों का वर्णन करते हैं और

प्रकृति की इन सारी गतिविधियाँ एवं सबके अस्तित्व इस पर्यावरण संतुलन पर आधारित है। लेकिन आज विश्व पर्यावरण असंतुलन के प्रभाव से बहुत अधिक जूझ रहा है। इस संदर्भ में इन पर्यावरण असंतुलन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना तथा लोगों में पर्यावरण सजगता जगाने वाले साहित्यिक कृतियों का आज के समय में महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व भर में आज इस तरह की कई रचनाएँ लिखी जा रही हैं। जिनके केंद्र में पर्यावरण और इससे जुड़ी समस्याएं भी हैं। अपने समय से गहरे संस्पर्श के कारण समकालीन हिंदी उपन्यासों में मुख्य विषय के रूप में पर्यावरण असंतुलन का उभर आना सहज और स्वाभाविक ही है।

हिंदी साहित्य में प्राचीन काल से ही प्रकृति को केंद्र में रखकर कई उपन्यास लिखे गए हैं। लेकिन समकालीन हिंदी उपन्यासों में प्रकृति और प्रकृति पर मानव अत्याचार और इसके फलस्वरूप उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन को भी विषय के रूप में देखा जा सकता है। इसी संदर्भ में पर्यावरण असंतुलन का अध्ययन और उसका प्रचार महत्वपूर्ण बन जाता है। समकालीन उपन्यासकारों में प्रकृति तथा आदिवासी जीवन के संबंध को अच्छी तरह पहचानने वाले लेखक हैं श्रीप्रकाश मिश्र। आदिवासी जनजीवन और उसके सर्घषों को उनके उपन्यास में मुख्य विषय के रूप में देखा जा सकता है। इसके साथ पर्यावरण संवेदना इनकी कृतियों में कूट-कूट कर भरी है। आदिवासी तथा पर्यावरण के आधार पर लिखे हुए उनके दो उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (1996) और 'रूपतिल्ली की कथा' (2006) बहुत चर्चित एवं उल्लेखनीय हैं। इन दोनों उपन्यासों में श्रीप्रकाश मिश्र ने पर्यावरण का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया है।

पर्यावरण और मिज़ोरम के संघर्ष को केंद्र में रखते हुए श्रीप्रकाश मिश्र ने उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (1996 ई.) लिखा है। यह उपन्यास पर्यावरण असंतुलन की दृष्टि से भी विशेष चर्चित है। इस उपन्यास में श्रीप्रकाश मिश्र ने पर्यावरण संरक्षण पर अधिक बल देते हुए उत्तरपूर्व मिज़ो जनजाती के जीवन संघर्ष के आधार पर उनके अस्मिता, स्वतंत्रता, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, एवं स्त्री शोषण की प्रक्रिया को प्रतिबद्धता और सहभागीदारिता के स्तर पर उद्घाटित किया जाता है। साथ ही वहाँ का इतिहास, भूगोल, संस्कृति, भाषा, जीवनचर्या, खानपान, प्रकृति, जगंल, पहाड़ व पशु-पक्षियों के जीवन और सार्थक प्रस्तुति व उपस्थिति सार्थक एवं मूल्यवान स्वरूप प्रदान करती है। प्रस्तुत उपन्यास की कथा मिज़ोरम की छोटी-सी डोपा गांव पर आधारित है। सैंतीस अध्याय में विभक्त प्रस्तुत रचना की विषय वस्तु मिज़ो विद्रोह है। इस विद्रोह को स्पष्ट करते हुए इस उपन्यास के लेखक श्रीप्रकाश लिखते हैं "यह उपन्यास ऐतिहासिक नहीं है। कहीं इक्का-दुक्का वास्तविक व्यक्तियों के नाम आए भी है, तो कथा का विश्वसनीय बनाने के लिए। अगर किसी के जीवन के टुकड़े से कोई अंश इत्तफाक रखता मिलेगा तो सिर्फ इसलिए कि कल्पना की दीवार कहीं-न-कहीं यथार्थ की बुनियाद पर ही बनती है। फिर भी यह उपन्यास आम पाठकों को पूर्वोत्तर भारत की समस्या को समझने की खासी सामग्री देगा।[1]

पर्यावरण की दृष्टि से देखा जाए तो, प्रस्तुत उपन्यास में श्रीप्रकाश मिश्र ने मिज़ोरम की प्राकृतिक वातावरण का चित्रण बड़ी मनोरम के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में वहाँ की पहाड़ियों की ऊँचाई, काटने का तीखापन, नदी का बहाव, आसमान की चमक, पानी का स्वाद, पेड़ों की छाव, लहराती फसल की खुशबू, भूख से ऐंठते आदमी की आवाज, शिकारी की चालाकी, पशुओं का बर्ताव, नाचते पाँव, हवा की छुअन, धूप की गर्मी ये सारी चीजें कहीं-न-कहीं हमें नजर आती हैं। प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा मिज़ो विद्रोह से संबधित है। लेकिन श्रीप्रकाश मिश्र ने मिज़ो विद्रोह की इस कथा को केवल आदिवासी संघर्ष तक सीमित न रखकर पर्यावरण अंसतुलन के

पक्ष को भी उजागर करते हैं। क्योंकि इस उपन्यास में दो तरह के पर्यावरण असंतुलन के चित्र दिखाई पड़ते हैं- एक तो प्रकृतिजन्य दूसरा मानवजन्य।

प्रकृतिजन्य असंतुलन

प्रकृतिजन्य असंतुलन का मुख्य कारण बाँस में फूल खिलना और इसके कारण अकाल एवं जानवरों की संख्या में वृद्धि पड़ना था। इससे मिज़ोरम के समूचे पर्यावरण व जीवमंडल पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मिज़ोरम का प्रमुख उत्पाद बाँस है। बाँस मिज़ोरम के जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग है और इसका इस्तेमाल धार्मिक अनुष्ठानों, कला और संगीत में भी किया जाता है। भौगोलिक क्षेत्रफल की तुलना करें तो मिज़ोरम में बाँस का सबसे बड़ा जंगल है। यहाँ तीन तरह के बाँस पाए जाते हैं और इनमें सामूहिक पुष्पन के दो अलग-अलग चक्र चल रहे हैं। मौजूदा सामूहिक पुष्पन को मिज़ो भाषा 'मौ तम' कहा जाता है। जबकि, सन् 2012 ई.में संभावित सामूहिक पुष्पन की 'थिंगतम' नाम से जाना गया। 'मौ तम' के दौरान नीलाकैना बस्बूसायडीज, लाजिरापेयस प्रजातियों में पुष्पन संभावित है। मिज़ोरम में बाँस का फूल खिलना अकाल, विनाश और अपशकुन का प्रतीक माना जाता है। इसके लिए मिज़ो भाषा में 'माउटम' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

वास्तव में इस उपन्यास की मुख्य कथा माउटम नामक घटना से संबंधित है। इस घटना के अनुसार मिज़ोरम में हर 50 साल की अवधि के बाद बाँस फूलते हैं जिन्हें वहाँ के चूहे खाकर बहुत अधिक बच्चे पैदा करते हैं और मिज़ोरम में अकाल की स्थिति बन जाती है। मिज़ो जनजीवन पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास में माउटम घटना को केन्द्र में रखकर 1968 ई.में 'लालडेग विद्रोह' को बडी तीव्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास के नामकरण का भी एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है ये फूल बिरल आते हैं, लेकिन जब आते हैं तब प्रकृति नया असुतंलन पैदा करती है। चूहे इन फूलों को खाते हैं जिससे उनकी प्रजजन शक्तिअसामान्य ढंग से बढ़ जाती है। लाखों की संख्या में पैदा हुए चूहे खेतों की फसल, घरों में रखा अनाज, फल, सब्जियों समेत जो सामने आता है, सब चट कर जाते है। साल बीतते-बीतते अकाल पड़ जाता है। आदिवासी बड़े-बूढ़ों का कहना था कि अगले तीन साल में इस इलाके में ज्यादातर बाँस की कोठियों में फूल आएगा उससे पहले सारे बाँस यदि जला नहीं दिए जाते तो तबाही तय है।[2] वास्तव में बाँस में पुष्पन अभी भी रहस्य बना हुआ है। क्योंकि बाँस में फूल आने की कोई निश्चित समयावधि नहीं होती, पारम्पारिक ज्ञान व वैज्ञानिक शोधों में से तथ्य सामने आये है उनमें बाँस की विभिन्न प्रजातियों में विभिन्न समयन्तराल में फूल आते हैं और यह समयावधि 40 से लेकर 90 वर्ष तक की हो सकती है। पूर्वोत्तर में ज़मीन पर जो कुछ भी है उसमें सबसे अधिक बाँस और सुपारी दिखाई देते है। बाँस यहाँ की जिंदगी में शरीर में खून ले जानेवाली धमिनयों की तरह शामिल है। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिज़ोरम के सुदर गाँव में बरसाती पानी को घर तक लाने वाली पाइप लाइन, नागालैंड में चाकू की तरह और कई इलाकों में तो थाली-कटोरी की भी तरह इस्तेमाल किया जाता है। उसके फूल के विध्वंस की ताकत भयानक है। यह बजती हुई बाँसुरी के अचानक किसी स्तर पर, गरदन उतारने वाली तलवार में बदल जाने जैसा अजूबा लगता है। कुछ मिज़ो लोगों ने बताया कि जब बाँस की उम्र पूरी हो जाती है तो उसमें फल फूल आ जाते हैं। जब बाँस फूल देना आरंभ करता है तो उसकी समष्टि में एक साथ पुष्पन होता है। बाँस खिलने के बाद नष्ट होना शुरू हो जाता है और इन फूलों में बने बीज जो बहुत पौष्टिक होता है, चूहे के लिए सर्वोत्तम आहार है, नतीजतन चूहों की संख्या में अचानक वृद्धि होती है, बाँस के बीज खाकर ये चूहे घरों में, खलिहानों में, खेतों में घुसने लगते हैं। लोगों का अनाज खाते हैं ,पानी की सप्लाई में इन चूहों की लाशें बहने लगती हैं जिससे लोग खाने-पीने के लिए तरस जाते हैं, साथ ही इन चूहों द्वारा तमाम तरह की

बीमारियाँ भी मानव घरों तक पहुँचती हैं। ऐसी हालत में इन इलाकों में अकाल व दुर्भिक्षता के दिन आ जाते हैं। ऐसी हालत के कारण ही मिज़ोरम में सम्पूर्ण जीवमण्डल में अंसतुलन की स्थिती बन जाती है। यही एक सच्चाई है कि इस उपन्यास में प्रकृतिजन्य असंतुलन के कारण उत्पन्न बाँस में फूल खिलना और इसके फलस्वरूप उत्पन्न विविध समस्याओं के कारण मिज़ोरम के पूरे जीव मंडल पर बेहतर नकारात्मक प्रभाव डाला है। इस प्रकृतिजन्य असंतुलन होने के मुख्य कारणों में अकाल एवं जानवरों की संख्या में वृद्धि पड़ना है।

अकाल : अकाल एक प्राकृतिक आपदा है। यह मूल रूप से दो कारणों से उत्पन्न होता है। एक कृत्रिम है तो दूसरा प्राकृतिक है। इस उपन्यास में प्राकृतिक कारणों से अकाल की स्थिति पैदा हो गई है। प्रस्तुत उपन्यास में बाँस के फूलने की परिघटना को अकाल की सूचना से जोड़कर देखा जा सकता है क्योंकि मिज़ोरम में जब बाँस फूलते हैं जिन्हें वहाँ के चूहे खाकर बहुत अधिक चूहे पैदा करते हैं और मिज़ोरम में अकाल की स्थिति बन जाती है। इस बाँस के फूल को अकाल के प्रतीक के रूप में प्राचीन काल से माना जाता है। प्राचीन काल से यह मान्यता थी कि बाँस में फूल आना, हल्की बारिश और लंबे समय तक गर्मी का प्रतीक है। इसी कारण मिज़ो लोगों के जीवन में अकाल एक भयावह पर्यावरण की समस्या की तरह है। क्योंकि मिज़ोरम एक कृषि प्रधान देश है और मिज़ोरम की अधिकतर फसलें वर्षा आधारित होती हैं। वर्षो बरसात न हो तो यह फसल नष्ट हो जाती है। इसलिए इस अकाल के कारण मिज़ोरम में, कृषि उत्पादन की कमी, पशु की संख्या में कमी , चारों की कमी आदि के कारण कृषि तंत्र पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके साथ स्थायी संपत्तियाँ (भूमि, मकान, जवाहरात) आदि को बचाने की मजबूरी, भुखमरी, रोग तथा कुपोषण में मृत्यु आदि पर प्रतिकूल प्रभाव हो पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य रूप से सूखे बाँस की समस्या ही आती है। अकाल के समय बाँस सूख जाता है। सूख जाने से बाँस का फूल अत्यधिक ज्वलनशील भी होता है। दो बाँसों के आपस में रगड़ने से इनमें भी आग लगने का भी खतरा रहता है। यह अन्य पौधे से सूर्य के प्रकाश को अवरुद्ध करता है। यह अन्य पौधों को बड़ी नुकसान पहुँचाता है। जिससे जंगल के विकास में बाधा उत्पन्न होता है।

जानवरों की संख्या में वृद्धि : प्रस्तुत उपन्यास में प्रकृतिजन्य असंतुलन के कारण आनेवाली दूसरी समस्या है जानवरों की संख्या में वृद्धि। किसी एक स्थान पर जानवरों की संख्या अधिक हो जाती है , जिस कारण क्षेत्र की वन्य जीवन में विपरीत प्रभाव पड़ता है। वन्य जीवन पर्यावरण संतुलन और प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं में स्थिरता प्रदान करने वाले एक महत्वपूर्ण घटक है , यह प्रकृति के पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में मदद करता है खाद्य शृंखला और भी बनाए रखते हैं। ये खाद्य शृंखला प्रकृति में गतिशील है जो एक पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक और अजैविक घटकों को जोड़ती है। एक जीव दूसरे को खाता है या दूसरे द्वारा खाया जाता है। जीवों का एक क्रम जो एक दूसरे को खिलाता है और उर्जा का स्थानांतरण एक खाद्य शृंखला बनता। महत्वपूर्ण बात यह है की इन खाद्य शृंखला में किसी प्रकार के असंतुलन पैदा हुआ तो पूरे पर्यावरण मंडल पर इसका प्रभाव पड़ता है।

मानवजन्य असंतुलन

पर्यावरण या प्रकृति में आये इस असंतुलन का एक कारण बाँस फूलने संबंधित है, ये जो प्रकृति जन्य असंतुलन की सृष्टि होता है। लेकिन दूसरी मुख्य वजह जो है मानवजन्य विकास से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता रहा है। उपन्यास की दृष्टि से देखा जाए तो, आदिवासी जनजीवन संघर्ष की ओर लेखक उन्मुख होने के कारण पर्यावरण असंतुलन की मुख्य समस्या के रूप में मानवजन्य आते है। आज के जमाने में अधिकांश रूप में मानवजन्य समस्या ही झेलनी पड़

रही है। इस उपन्यास में भी यह दिखाई पड़ती है कि मिज़ोरम की मिज़ो जनजाति के जल, जंगल, जमीन के लिए उनपर होनेवाले शोषण एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष को बड़ी तीव्रता के साथ नज़र आती हैं। इस उपन्यास का आरंभ ईसाई लूशइयों के इतवार के उत्सव से होता है और अंत इसके ठीक विपरीत मिज़ो विद्रोह में मारे गए विद्रोहियों के शोक से होता है। इस प्रकार मिज़ो विद्रोह के प्रमुख कारणों में बाँस के फूलने से आए दुर्भिक्षा भी रही होगी इसी तरह विकास की योजना बनाई है तो जरूर इन मिज़ो जनजातियों का कुछ-न-कुछ नुकसान होने का संकेत होगा। इसलिए एक जगह श्रीप्रकाश मिश्र ने लिखा है - विकास के नाम से क्या समस्या है? यह उपन्यास के पात्र दोला द्वारा मिज़ोरम की समस्या का विश्लेषण इस प्रकार किया है मिज़ोरम पिछड़ा है, गँवार है। दुखी है, दरिद्र है। इसे बदलना चाहिए। इसे बदलना तो वाई भी चाहता है। पर वाई भी दो है। एक तो सरकार है, जो नीति बनाती है: उन्हें वैसा ही छोड़ दो; सिर्फ उन्हें लिखाओ-पढ़ाओ और आरक्षण की बदौलत नौकरी दो। सुरक्षा के लिए ज़रूरी हो तो सड़कें बनवा दो। लोग वाकई भूखों मरने लगें तो थोड़ा अन्न पहुँचा दो। किन्तु इन्हें छेड़ो नहीं। एक विशाल गणतंत्र की विरासत 'एकता में अनेकता' के उदाहरण स्वरूप इनकी जीवन पद्धति अक्षुण्ण रखो। 'एन्थ्रोपोलोजीकल म्यूज़यिम के पीस' के रूप में। दूसरा, इस नीति को क्रियान्वित करने वाले वाइयों का दल है; जो विकास के लिए मिले पैसे अपनी जेब में रख लेता है, यहाँ का अदरक, चावल, मिट्टी के मोल ले जाकर अपने वतन में सोना बनाता है, यहाँ की सुरा-सुन्दरियों का उपभोग इस तरह करता है कि जैसे मिज़ोरम उसकी ज़मीनदारी हो, उपनिवेश हो और वह इस उपनिवेश का एकमात्र मालिक।[4] उपन्यास का अंत कुछ इस प्रकार होता है कि मिज़ो विद्रोहियों की पराजय होती हैं, सरकार द्वारा शांति-वार्ता की चर्चा होती है लेकिन वह असफल हो जाती है। बहुत अधिक संख्या में विद्रोही मारे जाते हैं जो बच जाते हैं वो जंगलो में चले जाते हैं।

विवेच्य उपन्यास में मिज़ो जनजाती एवं पर्यावरण का संघर्षमय वातावरण को चित्रित किया गया है। विकास की ओर अग्रसर होने वाले पूंजीपति लोगों के उपभोक्ता वृत्ति के कारण मिज़ोरम के पूरे जीव मंडल पर असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। मिज़ोरम का पहाड़ी पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण बाज़ार एवं उपभोक्तावाद को भी बढ़ावा मिलने लगा, जिसकी वजह से वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का अधांधुध दोहन होने लगा।इसका यथार्थ चित्रण श्रीप्रकाश मिश्र ज्वलंत समस्या के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। श्रीप्रकाश मिश्र ने इस उपन्यास में मिज़ो जनजाति की समस्याओं, जैसे जमीन-जंगल पर अधिकार, नौकरी में जगह, ठेकेदार का शोषण आदि को जाहिर करते हुए उनको मुख्यधारा से जोड़ने की समस्या पर प्रकाश डालता है। एक तरफ वह उनका एन्थ्रोपोलोजीकल म्यूज़ियम बनाकर रखना चाहती है तो दूसरी तरफ वह उनके हैबिटाट को उजाड़ कर वहाँ की प्राकृतिक संपदा लूटकर विदेशियों के हवाले कर देना चाहती है। इससे विस्थापन, पर्यावरण विघटन, प्रदूषण, तथा पर्यावरण असंतुलन आदि विविध समस्याएँ पैदा हो रही हैं। यह मनुष्य के अस्तित्व के लिए नहीं बल्कि हमारे जीव-जंतुओं और जैव सम्पदाओं के लिए भी खतरनाक है। केरल के विख्यात पारिस्थितिक कार्यकर्ता सी. आर. नीलकंठन ने जो कहा है, वह इस संदर्भ में एकदम उल्लेखनीय है-मिट्टी जीवन की कोख है। मिट्टी के हर कण में पलनेवाली खास वनस्पतियाँ हैं। एक ही कोख में भिन्न प्रकार के बीज अंकुरित नहीं होते हैं। लेकिन हम इसी के लिए अब भी प्रयत्नरत हैं।[5] पर्यावरण और विकास के बीच में संतुलन की अनिवार्यता है। अनियोजित विकास परियोजनाओं तथा पूंजीपति मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न पर्यावरणीय अंसतुलन के कारण आज ऐसी स्थिति हो गई है कि मनुष्य को सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा, पीने के लिए साफ पानी तथा खाने के लिए शुद्ध भोजन भी नहीं मिल पा रहा है।

निष्कर्ष : श्रीप्रकाश मिश्र का प्रस्तुत उपन्यास

'जहाँ बाँस फूलते हैं' में पर्यावरण सजगता के प्रति अधिक ध्यान देते हुए हमारा पर्यावरण बोध को जगाता है। इस उपन्यास की प्रमुख समस्या 'पर्यावरण असंतुलन' है। कैलाश बनवासी जी के शब्दो में, प्रकृति का संपूर्ण तंत्र एक मशीन की तरह है। मशीन के हर भाग उसके सुचारु कार्य संचालन के लिए महत्वपूर्ण है। पेड़-पौधे, प्राणी, कीड़े-मकौड़े, पक्षी, हिंसक जीव आदि सभी प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग हैं।[6] प्रकृति के इन अंगों में किसी एक का संतुलन बिगड़ता है तो प्रकृति का पूरा क्रियाकलाप असंतुलित हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, 'पर्यावरण असंतुलन' किसी भी तरह हो चाहे प्रकृतिजन्य या मानवजन्य इसका प्रभाव पूरी शृंखला पर पड़ता है क्योंकि पर्यावरण के किसी पारिस्थितिक तंत्र में किसी घटक पर मानवीय प्राकृतिक प्रभाव के कारण उस घटक के प्रभावित जीवन से असंतुलन पैदा होता है।

वर्तमान समय में देखा जाए तो, पर्यावरण असंतुलन की समस्या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है। यह केवल भारत की समस्या नहीं, बल्कि पूरे विश्व और मनव राशि की समस्या है। इसलिए इसकी रोकथाम भी मानव रूप से ही संभव है। कोई एक व्यक्ति या संस्था ही पर्यावरण को संतुलित नहीं बनाए रख सकती। हम सभी को मिल कर प्रयास करने होंगे और इसे संतुलित बनाए रखना हम सभी की सामूहिक जिम्मेदारी है। ऐसे संदर्भ में पर्यावरण और पर्यावरणीय अध्ययन और उसका प्रचार महत्वपूर्ण बन जाता है ताकि लोगों की जागरुकता से ही देश के पर्यावरण को संतुलित बनाया जाता है।

समग्र रूप में कहें तो, श्रीप्रकाश मिश्र जो प्रस्तुत उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' में पर्यावरण से संबंधित कई विचारणीय मुद्दों को ईमानदारी के साथ उजागर करते हैं। सच कहें तो इस उपन्यास की प्रमुख चिंताओं में से एक है पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विचार। ये हमें सजग बनाती है कि पृथ्वी का नाश पूरे जीव मण्डल का नाश है इसलिए मानव जीवन के लिए सामाजिक भौतिक विकास के साथ पर्यावरण संतुलित रूप अनिवार्य है। इसलिए यह हमेशा याद रखना है कि, इस सृष्टि संरचना में प्रत्येक चीज़ एक दूसरे के पूरक है एवं एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व केवल कल्पना मात्र है। इसलिए प्रकृति एवं मानव सहित सभी जीवों के बीच पारस्परिकता एवं एकता की उपस्थिति अनिवार्य है। क्योंकि प्रकृति की सारी गतिविधियों एवं अस्तित्व पर्यावरण संतुलन पर आधारित है। प्रकृति के साथ सहवर्तिता में ही सब का जीवन सुरक्षित होगा। यह सचेतना हर समय की माँग है। इसीलिए प्रकृति को सुरक्षित एवं स्वस्थ रखना अनिवार्य है।

संदर्भग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ

श्रीप्रकाश मिश्र, 'जहाँ बाँस फूलते हैं', यश पब्लिकेशन्स 1110753, गली नं. 3 सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, नियर कीर्ति मंदिर, दिल्ली-110032

पहला संस्करण: 1996

संशोधित संस्करण: 2011

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. श्रीप्रकाश मिश्र, 'जहाँ बाँस फूलते हैं' प्राक्कथन से
2. डॉ. अहमद एम फिरोज़, वाडमय त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका, आदिवासी विशेषांक भाग-2, 2014, पृ.सं.154
3. अनिल यादव, 'वह भी कोई देश है महाराज', अंतिका प्रकाशन, गज़ियाबाद, 2012, पृ. सं.-47
4. श्रीप्रकाश मिश्र, 'जहाँ बाँस फूलते हैं' पृ. सं.- 36
5. सी.आर.नीलकंठन, परिस्थितिदर्शनम, (सं.) प्रतापन तायाट्ट्, पृ. सं.- 237
6. कैलाश बनवासी, 'बाज़ार में रामधन' पृ.सं.- 8

शोधार्थी , हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल

विषय : सामाजिक बोध : समकालीन रचनाकार पंकज बिष्ट के 'उस चिड़िया का नाम' उपन्यास के संदर्भ में

सरिगा.जे

सामाजिक बोध से उस व्यवहार का बोध होता है जो एक से अधिक जीवित प्राणियों के पारस्परिक संबंधों को व्यक्तकरे, जिसका अर्थ निजी न होकर सामूहिक हो, जिसे किसी समूह द्वारा मान्यता प्राप्त हो और इस रूप में उसकी सार्थकता भी सामूहिक हो। समकालीन साहित्य सामाजिक बोध का भंडार है।जिसमें सामाजिक यथार्थ का रू-ब-रू चित्रण देने में सक्षम है।

समकालीन हिंदी साहित्य के सृजन में अत्यंत महत्वपूर्ण लेखकों में एक है पंकज बिष्ट। वे हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित पत्रकार, कहानीकार, उपन्यासकार और समालोचक हैं। संप्रति वे दिल्ली से प्रकाशित समयांतर नामक हिंदी मासिक पत्रिका के संपादक व संचालक हैं। पंकज बिष्ट का जन्म बीस फरवरी उन्नीस सौ छियालीस(1946) को मुंबई में हुआ। पंकज बिष्ट मूलतः एक समय और शिल्प सजग कथाकार हैं, अपने समय में घटित होनेवाले सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों की पहचान करते हुए,उनकी दूरगामी चुनौतियों और प्रभावों को अभिव्यक्तकरने हेतु कथा-रचना की नई प्रविधि का संधान इनकी कथा-यात्रा की बड़ी विशेषता है।

पंकज बिष्ट के साहित्य सृजन में पचास वर्षों की इस रचना यात्रा में लगभग चालीस कहानियाँ, तीन उपन्यास, एक बाल उपन्यास, तीन निबंध संकलन एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक लेखों, परिचर्चाओं के साथ ही पंकज बिष्ट आज के मूर्धन्य लेखकों में से एक हैं।

'उस चिड़िया का नाम' पंकज बिष्ट का दूसरा उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् उन्नीस सौ सत्तासी (1987) में हुआ। यह आंचलिक परिवेश में लिखा सामाजिक उपन्यास है। इसमें ग्रामीण परिवेश के लोगों तथा आधुनिकता से परिपूर्ण व्यक्तिों की परंपरा का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। पंकज जी ने इस उपन्यास में पर्वतीय ग्रामीण परिवेश की विषम परिस्थितियों, नारी जीवन की विसंगतियों तथा विषमताओं के साथ उनका एकाकीपन, छटपटाहट, दिशाहीनता, मूल्यों के लिए संघर्ष, माता-पिता और संतानों के संबंधों में टकराव की स्थिति तथा शिक्षित व्यक्तिों का गाँवों से शहरों की ओर पलायन आदि तथ्यों का सजीव चित्रण किया है।

उपन्यास की प्रकृति की यह विशेषता है कि लेखक अपने लेखन से मूर्त को अमूर्त करके नैतिक संवेदना के साथ समाज को सोचने पर मजबूर कर देता है। पंकज बिष्ट का उपन्यास इस दृष्टि से बड़ा ही सजीव नजर आता है। इसमें अवरुद्ध या स्थगित प्रतीत होने वाले कुमाउंनी समाज के प्रकृत जीवन और इतिहास-चक्र को समझने की कोशिश निहित है।

मुख्य कथा हरीश के पिता जी की बीमारी से प्रारंभ होती है। यह कथा पिता की मृत्यु के पश्चात भी उनकी इर्द-गीर्द परिधि के समान घूमती रहती है।पिता दीवान सिंह अधिकारी जो एक रिटायार्ड अध्यापक है, जिन्हें पैंसठ वर्ष की आयु में ब्रेन हैमरेज हो जाता है वे अपने जीवन काल में अपने आदर्श तथा मूल्यों के लिए लड़ते रहे, वे अपने परिवेश में सभी लोगों के लिए आदर्श व्यक्तिथे। जिनकी बात सभी लोग माना करते थे परंतु उनका पुत्र हरीश उनकी कोई बात नहीं सुनता क्योंकि उनके स्वभाव एवं संबंधों में अंतर्विरोध था।

'उस चिड़िया का नाम' अतीत और वर्तमान के रिश्तों को ज़रूर ही कुछ जोड़ने वाला है। उपन्यास में केवल विशिष्ट शिल्प का उपयोग महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण वह नैतिक संवेदना भी है। पिता की भयानक बीमारी और मृत्यु के बाद के तेरह दिन की अवधि में इस उपन्यास का संपूर्ण कथानक घटित होता है। पिता की मुख्य कथा के साथ-साथ हरीश, रमा, पार्वती, माँ तथा सिस्टर ब्रियोनी की मुख्य' कथाएँ उपन्यास के अंत तक स्मृतियों के रूप में चलती रहती है। ये सभी व्यक्ति पिता की मृत्यु के पश्चात् भी परस्पर अत्यधिक गहनता से जुड़े हुए हैं।

हरीश तथा पिता के संबंधों में परस्पर मन-मुटाव रहता

है। वह कर्मकांड का विरोधी है। पिता की मृत्यु के पश्चात भी किये जाने वाले कर्मों में रुची नहीं लेता। अपने अंतर्विरोध के कारण वह पिता की मृत्यु के पश्चात् भी क्षमा नहीं कर पाता। वह अपने पिता को माँ की मृत्यु का जिम्मेदार मानता है। हरीष अपने पुत्र के लिए ऐसी चिड़िया की तलाश में है जिसका वह नाम तक नहीं जानता। इस चिड़िया की खोज में ही उपन्यास की कथावस्तु अग्रसर होती है। रमा उपन्यास की दूसरी प्रमुख पात्र है। जो हरीश की छोटी बहिन है। रमा अपने पिता के प्रति गहन लगाव है।

स्मृति ही इस सीमित समय को शिथिल मुक्तफैलाव में ले जाती है और पिता की कथा के साथ जुड़ी अनेक उप-कथाएं कुमाउँनी परिवेश के यथार्थ को तीव्रतम अभिव्यक्ति देने में सहायक हैं। इतिहास, लोक-कथा, लोकगीत, समाज विज्ञान, मिथक और कल्पना का संश्लेषण उपन्यासकार की मुख्य पूँजी है, जिसके जरिये वह पिता नामक चरित्र के जटिल व्यक्तित्व के भयावह रूप से दयनीय परिणति की गाथा लिखने बैठता है।

उपन्यास की शुरु आत में ही इसके कई प्रसंग देखने को मिलते हैं, जैसे हरीश दा ने एक पारसी लड़की से शादी कर ली थी और पिता जी शायद ही किसी गैर जाति के हाथ का भोजन करने को तैयार थे। वह उच्च जाति के सूर्यवंशी क्षत्रिय सिर्फ क्षत्रियों से ही संबंध रख सकता था, ऐसे-गैरों से नहीं।

स्मृतियों का दबाव यहाँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। व्यक्तिके मानस-पटल में यह बात शुरु से ही घर कर गई है कि क्षत्रिय हम सबसे श्रेष्ठ हैं। वर्तमान समाज में भी बहुत सारे लोग इस गलत धारणा के शिकार हैं। इसके विपरीत आधुनिक शिक्षा- दीक्षा ने इस बात का खंडन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि कोई भी व्यक्तिजन्म से श्रेष्ठ नहीं होता, बल्कि समाज में रहते हुए अपने कर्मों से होता है और जो अपने कर्म से आदर्श समाज का निर्माण करते हैं, समाज उन्हीं का आदर-सत्कार करता है।

उपन्यास में पार्वती की कथा भी हरीश के पिता की मुख्य कथा से प्रारंभ से जुड़ी हुई है। पार्वती के माध्यम से उपन्यासकार ने स्त्रियों के साथ होनेवाले दुर्वयाहार एवं दयनीय दशा का चित्र प्रस्तुत किया है।

माँ की कथा उपन्यास में प्रारंभ से ही नहीं है परंतु हरीश की स्मृतियों में माँ सदैव छायी रहती है। वह बार-बार अपनी बहन रमा को माँ की बातें बताता है। पिता माँ के मायके वालों को भी पसंद नहीं करते थे। यद्यपि माँ की मृत्यु के पश्चात भी पिता को क्षमा नहीं कर पाता। इस प्रकार माँ की कथा पिता की मुख्य कथा को प्रवाहमय तथा रोमांचक बनाते हुए उपन्यास को आगे बढ़ाती है। यह तथ्य वर्तमान समाज में माता-पिता के संबंधों को उजागर करता है। जहाँ पुरु ष अपने स्वार्थों के लिए स्त्री को मोहरा बनाता रहा है। सिस्टर ब्रियोनी का प्रसंग मुख्य कथा को निरीह के साथ मानवीय अंतर-संबंधों को प्रकाशित करने में भी उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है। ब्रियोनी दिवान सिंह की मृत्यु के पश्चात् शोक संदेश भेजती है। इसी कारण हरीश को भी सिस्टर की याद आ जाती है। भवाली में कुछ समय ब्रियोनी ने रमा तथा हरीश की देखभाल की थी।

पंकज बिष्ट का यह उपन्यास पारंपरिक फ्रेम को तोड़ते हुए एक ऐसी समस्या पर बुना गया है, जो वर्तमान समय में व्यक्तिके विघटन, स्त्री की संघर्षमयता तथा उसकी दर्दनाक परिणति का आख्यान है। चूंकि उपन्यास के केंद्र में व्यक्ति की गहन आंतरिक प्रवृत्तियाँ हैं, इसालिए रचना कालखंड में खडी न होकर अपने समय को भेदती है और कालजयी बनती है। समस्या यह है कि आदर्शवादी दीवान सिंह अधिकारी का नैतिक पतन क्यों हुआ, दुर्गावती जैसी उनकी पत्नी उपेक्षित क्यों होती गयी,संतानों के लिए अपेक्षित स्नेह और वात्सल्य वह उन्हें क्यों नहीं दे पाते,क्यों यौन कुंठा उनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा विनियामक बन गयी? ये प्रश्न केवल उपन्यास में ही नहीं,अपितु हमारे सामाजिक परिवेश से भी जुड़े हुए हैं, जिनका विश्लेषण हम आए दिन किसी-न-किसी रू प में करते रहते हैं। ये प्रश्न हमारे सामाजिक प्रश्न हैं, जो अपने भीतर भारतीय मध्यवर्ग की उन सारी विडंबनाओं को सहेजे हुए हैं, जो उसकी त्रासदी के कारण हैं।

दाम्पत्य की विसंगति और दुर्गावती का असुंदर होना एक पक्ष है, वह समूची समस्या का कारक नहीं है, वह अपने भीतर विघटित हुए एक व्यक्ति एक समाज, एक संस्कृति के अपसरण, आत्मघात, आत्मवंचना और

आत्मनिलंबन की त्रासदी है। इसमें कथित टूटन और अकेलेपन के बीच थोड़े से सुख के लिए अपने को ही होम कर देने की आपाधापी मची है। आज वर्तमान में भी असंख्य ऐसे घर हैं, जिन में औरत सिर्फ तुच्छ खुशियों के लिए शोषित होती रहती है तथा अपने परिवार को टूटन से बचाए रखने के लिए तिरस्कृत होती रहती है। दीवानसिंह अपने सामाजिक जीवन में इतना आदर्शवादी रहा, वह क्यों इस अधोगति को प्राप्त हुआ, पंकज बिष्ट ने समस्याओं की विरूपता को एक संस्कृति के भीतर दुनिया का शक्ल करके दिखाया है, वह एक प्रक्रिया बन जाती है और मनुष्य के क्षत-विक्षत होते जाने की दर्दनाक कथा भी। सिस्टर ब्रियोनी, आनंदी और फिर पार्वती इस कथानक की त्रासदी के छोटे-छोटे उपकरण हैं, जो उसकी सिक्तता की पूर्ति में भागीदार बनते हैं, पर असल कारण उसके अपने में ही ना होने को है।

इस उपन्यास में एक और जो प्रमुख रूप से उभरकर आती है, वह उन स्त्रियों का यातनामय चित्रण है,जो स्मृति-चिन्न छोड़कर इतिहास में खो गयीं- बासंती, सिस्टर ब्रियोनी,सरुली। वर्तमान में जीवित खिमुली जैसी युवतियाँ और पार्वती उसी शृंखला में हैं। अंतिम रहस्य खुलते ही कि पिता से उसके संबंध थे, वह सामान्य से विशेष हो उठती है। शुरुआती दौर में केवल इतना आभास मिलता है कि वह दुखियारी लड़की है, जिसे पिता के सहयोग से शिक्षा मिली तथा पिता उसे पढ़ाते हैं, जिससे वह अन्दर-ही-अन्दर आरक्षित होती चली गई और अंत में पिता के साथ उसके संबंध स्थापित हो गये। उपन्यास के बीच-बीच में कई लघुकथाएँ भी मिलती हैं, जो कई प्रकार के सामाजिक संबंधों के टूटन को प्रतीकात्मक रूप में दिखाती हैं। कहा भी जाता है कि लोककथाएँ सच्चाई को कहीं ज्यादा प्रामाणिक ढंग से कह पाती हैं।

उपन्यास के अंत में हरीश और रमा पिता का श्राद्ध संपन्न कर लौटना चाहते हैं तो ताई का बक्सा खुलता है और लगता है, जैसे स्मृतियों की रील खुल गयी है। पिता के संबंधों का भी पता चल जाता है। रमा के लिए यह अपमान क्रोध और चिंता का विषय है कि त्रासदी, जिससे मुँह चुराने के लिए वह पलायन ही कर सकती है।

उपन्यास में जटिल संबंधों की परिणति यह है कि पार्वती और अध्यापक पिता के देह संबंध एक ओर आश्चर्य का विषय है, तो दूसरी ओर करु णा और सहानुभूति का। पिता के अकेलेपन में एक पूरे परिवेश का अकेलापन है। जैसे पिता की मौत में भी कई मौतें शामिल हैं, हत्याएँ और आत्महत्याएँ मौत की छाया में ही सारा कथानक घटित होता है। यह भी स्पष्ट होता है कि हरीश जिस चिडिया की तलाश में है, 'वह खुद ज़िन्दगी ही है।

इस उपन्यास में मानवीय अस्तित्व के गहरे प्रश्नों को भी छूने की कोशिश की गई है तथा परंपरा और आधुनिकता के बीच चल रही जद्दोजेहद भी स्पष्ट होती है। उपन्यास के अंत में पंकज जी ने परंपरा एवं आधुनिकता के द्वन्द्व को समाज के सामने रखते हुए प्रश्न किया है- जैसे   तोता मुस्कराते हुए बोला-मरा तो वह भी नहीं था। उसने तो मेरे लिए संदेश दिया था कि तुम इस तरह छूट सकते हो। धन्यवाद! आपने मुझे बहुत प्यार किया, पर पिंजरा तो पिंजरा ही होता है। अब मैं जा रहा हूँ- जहाँ मेरा घर है। पूरे उपन्यास में आधुनिक जीवन की समस्याओं को रेखांकित करता है। उपन्यास में उठी समस्याएँ आज राष्ट्रीय बहस की भी माँग करती हैं, जैसे पर्यावरण, जल-संकट, पेड़ों की कटाई, पर्वतों का ध्वंस, लोगों का पलायन आदि।

स्मृति और वर्तमान का द्वंद्व आधुनिक कथाकारों का प्रिय विषय है यहाँ पंकज जी इस परिचित विषय को नई दृष्टि से देखने की कोशिश करते हैं। इस उपन्यास का समर्थन स्वयं पंकज जी इन शब्दों में करते हैं- यह उपन्यास मात्र एक संस्कृति और भूगोल विशेष को समझने की कोशिश नहीं है जो किसी समाज की मानसिकता और उसके विकास को तय करने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं, बल्कि एक मिटती जीवनशैली को रिकॉर्ड करने की भी कोशिश है। अपने को, अपने अस्तित्व को, समाज और व्यक्तिके बदलते रिश्तों को समझने की भी कोशिश है। यह कोशिश है एक व्यक्तिके माध्यम से आधुनिकता के दबावों और एक ठहरे हुए समाज की जड़ता को पकड़ने की। एक व्यक्तिया परिवार या कहिए एक समाज के छोटे से समुदाय के माध्यम से नैतिकता-अनैतिकता और जीवन-मृत्यु के संबंधों को परखने की भी एक कोशिश। वास्तव में पंकज बिष्ट का उपन्यास 'उस चिडिया का नामट सामाजिक बोध की बानगी है।

शोधार्थी, महात्मागांधी कालेज, तिरुवनंतपुरम।

नव सांस्कृतिक परिदृश्य में 'कफ़न' और 'पट्टुकुप्पायम' कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन

जिबिता.एम

किसी देश या जाति की संस्कृति को समझने का अर्थ है उस देश या समूह -विशेष के समूचे जीवन - व्यवहार, उसका इतिहास ,बुनियादी ढांचे और उसके संपूर्ण स्वरूप को समझने का प्रयास । एक समाज-विशेष की संस्कृति की बहुत-सी समानताओं के बावजूद उसके आंतरिक बनावट, प्रकृति,बाह्य स्वरूप और उसका व्यवहार अपने आप में अलग होता है जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है। संस्कृति अपने पुरखों के सामूहिक इतिहास ,उनकी सामाजिक - आर्थिक परिस्थितियों ,उनके आचार -व्यवहार, जीवन - दर्शन,रीति- रिवाज़ और सामाजिक आचरण सहित अपने मौजूदा जीवन यथार्थ से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है ।वह उस समाज की विकास प्रक्रिया के साथ ही विकसित हुई है।

दो भिन्न भाषाओं की साहित्यिक रचनाओं को सांस्कृतिक परिदृश्य की पृष्ठभूमि में तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रत्येक समाज विशेष की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का अच्छा-खासा चित्र मिलता है ।तुलना भिन्न समाज विशेष की विभिन्न परिस्थितियों में मौजूद समानता पर भी प्रकाश डालती है ।प्रेमचंद और एस के पोट्टेक्काट हिंदी और मलयालम साहित्य के दो सशक्त हस्ताक्षर हैं।हिंदी और मलयालम साहित्य में दोनों का योगदान उल्लेखनीय रहा है। प्रेमचंद और एस के पोट्टेक्काट की कहानियाँ भारतीय समाज के आर्थिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं की तीखी आलोचना है।

'कफ़न' प्रेमचंद की ऐसी कहानी है जो सामाजिक संरचना की खामियों को उजागर करती है।'कफ़न' घीसू, माधव और बुधिया की कहानी है ।माधव की पत्नी बुधिया भीतर प्रसव वेदना से कराह रही है ।बाहर घीसू और माधव अलाव के पास बैठे भुने हुए आलू खाने में लगे हैं ,दोनों ठाकुर के यहां की दावत याद कर रहे हैं ।आलू खाकर दोनों सोने लगते हैं। उधर पीड़ा सहकर बुधिया की मृत्यु हो जाती है। सुबह उसकी मृत्यु पर दोनों रोना पीटना शुरु करते हैं । कुनबे के लोग जुटते हैं,अंतिम संस्कार की तैयारी होने लगती है ।घीसू और माधव कफन की व्यवस्था के लिए निकलते हैं । जमींदार से दो रुपये मिलते है।गाँव भर घूमकर पाँच रुपये से ज्यादा रकम जुटा लेता है। कफन के लिए शहर जाते हैं। दो चार जगह कफ़न देखने के बाद दोनों शराब की दुकान पर पहुँचते हैं। जी भर शराब पीते हैं ,खूब खाते हैं और बचा हुआ खाना भिखारी को दान में देते हैं, दोनों नशे में मस्त होकर गिर पड़ते हैं।

एस के पोट्टेक्काट की कहानी 'पट्टुकुप्पायम' भी सामाजिक संरचना की खामियों का पर्दाफाश करने वाली कहानी है ।यह एक गरीब शोषित परिवार की कहानी है ।पेरच्चन और कुंजीपेन्नु की दस संतानें हैं। कुंजीपेन्नु फिर से गर्भवती होती है। गरीबी से पीडति उस परिवार में कुट्टाई को छोड़कर बाकी सदस्य दुबले-पतले विरूपी है।उनका एकमात्र लड़का कुट्टाई मोटा तगड़ा है । उनकी सातवें बेटी नारायणी चार महीने से बीमार है इसके अलावा बड़ी बेटी जो विधवा है उसके दो छोटे बच्चे की भी जिम्मेदारी पेरच्चन के ऊपर थी । पेरच्चन की कॉटन मिल में नौकरी थी जहाँ से उसे पाँच अना प्रतिदिन मिलते थे। इस पाँच अने से चौदह पेट भराने थे। कुट्टाई के प्रति पेरच्चन को एक विशेष वात्सल्य था। कुट्टाई को अप्पुण्णि नायर नामक जमींदार के घर रोज़ जाकर चावल की चोरी करने की आदत थी। इसी कारण वह मोटा बन रहा था।ऐसी ही

एक रात कुट्टाई चोरी के लिए अप्पुण्णि नायर के घर आया। अप्पुण्णि नायर के दामाद के हाथों कुट्टाई की हत्या हो जाती है ।उसने चमगादड समझकर कुट्टाई पर गोली चलायी थी। अप्पुणिनायर पेरच्चन को बुलाकर कुट्टाई की बदतमीज़ी पर उसे डांटता है और पाँच रुपये देकर शव दफ़नाने को कहता है।कुट्टाई की मृत्यु पर परिवार के सभी सोग रोना पीटना शुरु करते हैं लेकिन अप्पुण्णि नायर और उसके परिवार के विरुद्ध कुछ नहीं बोल पाते। कुंजीपेन्नु जमींदार से मिले पाँच रुपये से भूख मिटाने के लिए सामान खरीदने को कहती है। पत्नी की बात मानकर पेरच्चन बाजार पहुँचता है लेकिन उसके मन में भारी संघर्ष चलता है ।वहाँ पहुँचकर उसकी नज़र पट्टुकुप्पायम (रेशमी कुर्ता)पर पड़ती है जिसके लिए कुट्टाई ने खूब जिद्द की थी। पट्टुकुप्पायम मिलकर मरें तो भी अच्छा है अपने बेटे का यह कथन उसे संघर्ष में डालता है ।अंत में वह पत्नी और बेटियों को भूल कर अपने मरे बेटे के लिए पट्टुकुप्पायम खरीद लेता है। घर जाकर पत्नी के सारे सवालों को अनसुना करके अपने बेटे के शरीर को लेकर अंतिम संस्कार करने जाता है। बच्चों की भूख की याद आने पर वह कंपनी के मालिक से रुपया खर्च लेने जाता है ।लंबी प्रतीक्षा के बावजूद भी कोई दरवाज़ा नहीं खोलता। कुत्ता भौंककर आया तो वहाँ से निराश होकर लौटता है।घर पहुँचता तो पता चलता है दवा और भोजन के बिना बीमार बेटी भी चल बसी थी।

'कफ़न'और 'पट्टुकुप्पायम' दोनों कहानियों की मूल संवेदना भूख है।भूख से पीडित मानव कैसे मूल्यहीन हो जाता है,यह हम दोनों कहानियों में देखते हैं।एक ओर घीसू और माधव बुधिया को भूलकर उसके कफ़न के नाम पर मिले रुपये से शराब पीते हैं,पेट भर खाना खाते हैं तो दूसरी ओर कुंजीपेन्नु अपने बेटे के नाम पर जमींदार से मिले पैसे से बाकी बच्चों को खाना खरीदने को कहते हैं। उनको अपने इकलौते बेटे की मृत्यु से ज्यादा जीवित बच्चों की भूख की चिंता है। भूख के सामने मातृत्व जैसे महान मूल्य किस प्रकार लुप्त हो जाता है इसका परिचय कहानी से मिलता है ।दोनों कहानियों में अमानवीयता की चरम सीमा है ।लेकिन क्या घीसू,माधव और कुंजीपेन्नु को अमानवीय बनाने में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था उत्तरदाई नहीं है? भूख की पीड़ा सह सहकर उनके मन से सभी मानवीय गुण लुप्त हो गये हैं। पत्नी, बेटे के प्रति अपने उत्तरदायित्व निभाने में वे असफल हो जाते हैं ।

वर्ग तथा वर्ण के नाम पर होने वाले अमाननीय शोषण का परिचय दोनों कहानियों में मिलता है। 'पट्टुकुप्पायम' का जमींदार अप्पुणिनायर अपने दामाद के हाथ पेरच्चन के बेटे की मृत्यु की ख़बर जानकर भी उसे छिपाकर पेरच्चन को बेटे की बदतमीज़ी पर गाली देता है। ज़मींदार लोग गरीबों के अशिक्षित होने का फायदा उठाते हैं । ज़मींदार के प्रति अपार भक्तिके कारण वे उनके विरुद्ध कुछ कहने में असमर्थ हो जाते हैं ।शायद इसी कारण पेरच्चन और कुंजीपेन्नु अपने बेटे के घातक अप्पुणिनायर के विरुद्ध कुछ कहने के बदले अपने बेटे को ही कोसते हैं। 'कफ़न' में भी अमानवीय शोषण का चित्रण है। किसानों की जी तोड़ मेहनत के बावजूद भी उसकी अवस्था में बदलाव न आना ,जमींदार द्वारा किसानों की निरीहता का लाभ उठाना ,समय पर काम न आने पर घीसू और माधव को पीटना ये सब चित्र वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज की भीषण त्रुटियों का पर्दाफाश करती है। वर्ण तथा वर्ग में निम्न होने के कारण जमीनदार पेरच्चन,घीसू और माधव जैसे शोषितों पर अधिकार जमाता है ।ठोस सामाजिक यथार्थ के चित्रण में प्रेमचंद ने घीसू को ऐसे पात्र के रूप में चित्रित किया है जिसको शोषक वर्ग की दुर्बलताओं की पहचान है और उनकी दुर्बलताओं से ज्यादा फायदा उठाने की समझ। प्रेमचंद लिखते हैं 'मगर इन दोनों को (मज़दूरी के लिए) उसी वक्त बुलाते जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी संतोष कर लेने के सिवा कोई चारा न होता ' 'फिर

भी उसे यह तस्कीन तो थी कि अगर वह फटेहाल है तो कम- से कम उसे किसानों की सी जी तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग फायदा तो नहीं उठाते'।

दोनों कहानियों में नारी का शोषण है,।बुधिया घीसू और माधव के लिए रात- दिन मेहनत करती रही। लेकिन उसके प्रति मृत्यु तक उनको सहानुभूति नहीं। प्रसववेदना से तडपनेवाली बुधिया के बारे में माधव का यह कदम उसकी हृदयशून्यता दर्शाता है। 'मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देख कर क्या करूँ? दोनों बुधिया की मृत्यु की प्रतीक्षा में थे, वह मर जाएँ तो आराम से सोने के लिए। बुधिया को कोठरी में जाकर देखने तक वह तैयार नहीं'।'पट्ठुकुप्पायम' में भी कुंजीपेन्नु का शोषण ही है। गरीबी से पीड़ित होकर भी संतानों को जन्म देनेवाली अभागी है कुंजीपेन्नु। कहानी के अंत में शायद पाठक यह सोचने को बाध्य होंगे कि यह कैसी माँ है? अपने बेटे के कफ़न के लिए मिले पैसे से अनाज लाने को कहती है ।लेकिन वास्तव में उसके मन में पेरच्चन के समान भेदभाव तो नहीं था।वह अपनी नियति से तडपती माँ है जिसके सामने बाकी बच्चों की भूख की चिंता थी।

'कफ़न' में हम ऐसे बाप -बेटे को देखते है जो जीवन की यथार्थता से उबकर अधिक व्यावहारिक बनते हैं। 'मरने वालों को कफ़न की क्या जरूरत? ऐसा एक प्रश्न उनके मन में पैदा होता है। कफ़न लगने से क्या मिलता?आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।' लेकिन 'पट्ठुकुप्पायम' में ऐसे बाप को हम देखते हैं जो अपने मृत बेटे की याद में भावुक होकर अपनी भूख से तड़पते बाकी जीवित बच्चों को भूल जाता है। 'पट्ठुकुप्पायम' की माँ अधिक व्यावहारिक दिखती है। कुंजीपेन्नु अपने मृत बेटे के अंतिम संस्कार से ज़्यादा महत्व बाकी बच्चों की भूख को देती है।

दोनों कहानियों में समाज के ढोंग और पाखंड से युक्त सामाजिक रीति प्रकट है। माधव कहता हैं' कैसा बुरा रिवाज़ है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथडा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए। कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है और क्या रखा रहता है? यहीं पाँच पहले मिलते तो कुछ दवा - दारू कर लेते। 'पट्ठुकुप्पायम'में भी समाज के यही पाखंडपूर्ण व्यवहार पर संकेत है।

जो जमीनदार पेरच्चन के बेटे को मारकर भी उसे तमीज़ न सिखाने पर पेरच्चन को डांटता है, वहीं उसके कफ़न के लिए पाँच रुपये क्यों देता है? जो जमींदार अपनी गलती तक मानने को तैयार नहीं वही कफ़न के लिए पाँच रुपये क्यों देता है?जिस समाज ने बुधिया के दवा -दारू को अनदेखा किया वही समाज उसकी मृत्यु में ज्यादा रकम देने में क्यों लगा है? इन सब सवालों का उत्तर यही है कि समाज भूख से अधिक महत्व अंतिम संस्कार को देता है।

दलित जीवन से संबंधित असमानता, धर्मान्धता, भूख, बेरोज़गारी जैसे अनेक समस्यायें दोनों कहानियों में चित्रित हैं। स्वतंत्रता के सालों बाद भी अनेक सरकारी कामों के बावजूद दलितों के जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है।अतः स्वतंत्रतापूर्व समय में लिखी गई ये दोनों कहानियां प्रासंगिक हैं और कालजयी भी।

संदर्भ ग्रंथ

1. 'कफ़न' प्रेमचंद (प्रकाशक-संदर्भ प्रकाशन, दिल्लीः संस्करण-प्रथम,2006)
2. 'इंद्रनीलम' - एस के पोट्टेक्काट(प्रकाशक-पूर्णा पब्लिकेषन्स, कोषिक्कोडः संस्करण-प्रथम,1996)

शोधार्थी

सरकारी आर्ट्स & साइन्स कॉलेज

कोषिक्कोड

मलयालम उपन्यास 'इरुमुटिक्केट्ट' का अनुवाद

दूनी गाँठ की गठरी

मूल : के.एल.पॉल

अनुवादः प्रो. डी. तंकप्पन नायर व अधिवक्ता मधु. बी.

सोपान
सत्रहवाँ

पंडाल में जमे हुए सब लोगों से सच्चिदानंद ने पूछा :"वे अब पहाड़ पर चढ़ना शुरू करते होंगे। है न? जवाब दिया रामनाथन ने : "मुझे लगता है कि वे अब भी पंपा में होगे। वहाँ के सारे धार्मिक रिवाजों में भाग लेंगे तो पहाड पर चढ़ने को और देरी होगी। कुछ भी हो, रात में ही अठारहवाँ सोपान चढ़ेंगे। भगवान का दर्शन करेंगे। हरिवरासन गीत गाने के बाद मंदिर का गर्भगृह बंद करने के पहले ही संभव होगा। सारी बातों के लिए गुरुस्वामी की गणना होती है। वह बिलकुल सही होगी...."

इसी बीच कल्याणी ने एक सुझाव दिया : "इस रात को हम क्यों न रतजगा न करें? अय्यप्पन की कथा कहते हुए और भजन गाते हुए पूरी रात बितावें।" सरस्वती ने कल्याणी के सुझाव का समर्थन किया। लीला ने सच्चिदानंद की तरफ़ देखा। सच्चिदानंद ने हामी भरी। जब सरस्वती है भजन की बात तो - सरस्वती के होने से भजन तो ठीक होगा.... मैं भी साथ गाऊँगा.... क्या सहमत है..."

सच्चिदानंद ने सरस्वती की ओर देखा।

सरस्वती ने सिर हिलाया।

"तब तो अय्यप्पनचरित कौन कहेगा?" कल्याणी ने पूछा।

"कल्याणी ही" सच्चिदानंद ने बताया।

"ओह! जब सच्चिदानंद मौजूद है तब मेरा कहना ठीक नहीं है... बड़े भाई और सच्चि भाई ही अच्छे कथा-कथन करनेवाले है..... मैंने कई बार सुना है। सच्चि भाई से कथित कथायें.... अभिव्यक्ति का सौंदर्य एवं अभिनय सहित और गीतों के आलापन के साथ अद्भुत प्रस्तुति...." यों कहकर कल्याणी ने सच्चिदानंद को प्रोत्साहित किया।

"सब राजी हों तो मैं कहूँ?...." सोलमन ने हाथ उठाया।

सच्चिदानंद ने सहमति प्रकट की : "अहा!.... अच्छी बात है। ... कथा-कथन की एक कोन्नी शैली..."

मेरी मन ही मन कहती हुई हँसी : "पक्का चोर कबाडिया सोलमन का कथा-कथन है"

सब को चाय बाँटती हुई लीला ने बताया : "सबसे पहले अय्यप्पन-चरित। फिर भजन..."

"स्वामिये शरणमय्यप्पा" शरण मंत्र मुखरित करते हुए सोलमन ने शुरू किया...

"ब्रह्मज्ञानी ऋषीश्वरों ने नैमिशारण्य में सूत मुनि से तारक ब्रह्म के आविर्भाव एवं महिमाओं को जानने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा :
त्रिमूर्तियाँ मिलकर एक महाशक्ति बनी। उस शक्ति का 'दत्त' नामकरण हुआ। तब योगमाया शक्तिस्वरूप देवियों का संगम हुआ और गालव महर्षि की पुत्री के रूप में जन्म लिया। गालव ने उसे 'लीला' पुकारी। गालव ने लीला को दत्त को दान किया। इस प्रकार दोनों साथ जीने लगे। जीवन के प्रति लीला की आसक्ति बढ़ती गयी। लेकिन दत्त ज्यादा ज्यादा विरक्त होता गया। विरक्त दत्त को मोहित करने के लिए लीला निरंतर प्रयास करती रही।

लीला ने दत्त से कहा : "मैं आप की महिषी हूँ। आप मेरी उपेक्षा न करें। मैं आप से जो सुख चाहती हूँ उनका निषेध न करें।"

लीला से तंग आकर दत्त ने लीला को शाप दिया : “स्वयं महिषी कहकर काममोहित होकर विरक्त को प्रलोभित करने का प्रयास करनेवाली तू महिषी रूप के साथ असुरवंश में जन्म ले!...”

क्रोधावेश में लीला ने दत्त को शाप दिया “ जब मैं महिषी के रूप में जन्म सूँगी तब आप एक महिष के रूप में जन्म लेकर मेरे साथ रमें.... तब शापमुक्ति भी हो जावे”

कुछ काल बीतने पर लीला ने करंभ नामक असुर की पुत्री के रूप में जन्म लिया। उसने करंभिका नाम से महिषी के मुख के साथ जन्म लिया। करंभ के ज्येष्ठ रंभ का पुत्र है कुप्रसिद्ध महिषासुर। महिषासुर की बहन का पद था महिषी को। उन दिनों चंडिकादेवी ने महिषासुर का वध किया। प्रतिकार की प्यासी बनी महिषी ने विंध्या पर्वत में तपस्या कर ब्रह्मा को प्रत्यक्ष किया। ब्रह्मा ने उसको वचन दिया कि न मरने को छोड़कर कोई भी वर दे दिया जाएगा। वरदान से प्रसन्न वह देवलोक पर कब्जा करने को उद्यत हुई। ब्रह्मा ने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली थी कि विष्णु एवं शिवं से उत्पन्न पुत्र ही उसका वध करेगा। वह भी वब पुत्र सिर्फ मनुष्य-दास के रूप में बारह साल जीने के बाद ही। अपनी ही तरह की महिषियों की एक सेना की भी सृष्टि करके वह देवलोक पर चढाई करने के लिए निकली। सारे देव महिषी का सामना करने को असमर्थ होकर ब्रह्मा विष्णु और शिव के शरण में गये। तब तीनों त्रिमूर्तियों ने एक सुंदर महिष की सृष्टि करके उसके पास भेजा। दोनों अनुरागबद्ध हुए। जब अनुराग की तीव्रता बढ़ी तो दोनों ने स्वर्ग छोड दिया और पृथ्वी के लिए रवाना हुए। इस प्रकार देवों को तत्कालिक रूप से स्वर्ग वापस मिला। महिषी और संदर महिष को जन्मे बच्चे ही हैं आज वन में दिखायी देनेवाले जंगली भैंसे। इस महिषी का वध करने के लिए ही विष्णु और शिव के संयोग से धर्मशास्ता का जन्म हुआ। अवतार लेने के बाद कौलास में जीवित रहकर सारी विद्याओं में प्रवीण होनेवाले शास्ता ने अवतार का लक्ष्य विस्तार से शिव से समझ लिया।

बारह साल मनुष्य दास के रूप में पृथ्वी में जीवन बिताकर, वनयात्रा करके महिषी का वध करने की बात जाननेवाले शास्ता पृथ्वी में गये। पिता शिव के द्वारा पहनायी गयी मणिमाला पहनते हुए और रोते हुए पंपा के किनारे लेटे। पंतलम के राजा परमभक्त राजशेखर ने संयोग से शिशु को देखा और वे शिशु को लेकर महल में ले गये। निस्संतान राजा के लिए वह मणिकंठ कुमार अपना पुत्र बना। कुछ काल बीतने पर राजा को राज्ञी में एक पुत्र हुआ। उसी के साथ राज्ञी एवं मंत्री का षडयंत्र शुरू हुआ। लेकिन राजा मणिकंठकुमार को युवराज घोषित करने के निर्णय पर अडिग रहे।

फिर मंत्री की ओर से मणिकंठ को मार डालने का श्रम हुआ। उसने उस के लिए अभिचार क्रियायें की। फलस्वरूप उसके सारे शरीर में व्रण हुए। उस समय एक तपस्वी के रूप में वहाँ प्रकट हुए शिव ने मणिकंठ को रोगमुक्त किया। तदनंतर मणिकंठ के शरीर की शोभा दस गुना बढ़ी।

मंत्री के उपदेश के अनुसार राज्ञी बीमारी का बहाना करके शय्यावलंबी हुई। वैद्य से कहलाया गया कि रोगमुक्ति के लिए दवा बनाने को चीते का दूध चाहिए। व्याकुल-चित्त राजा को देखते ही मणिकंठ ने कहा : “आप चिंताग्रस्त न हों। मैं जंगल में जाऊँगा और चीते के दूध के साथ लौटूँगा।..”

मणिकंठ अकेले ही वन जाने को निकले। भोज्य और तीन आँखों के नारियल से भरीएक गाँठ बनाकर सिर पर रखी। कंधे पर धनुष-बाण रखे। कंधे पर धनुष-बाण रखे। मणिकंठ के आगमन की प्रतीक्षा में शिव के भूतगण वापर, कटुशब्द, कूपकर्ण, घंटाकर्ण, कूपनेत्र आदि खडे थे। सुंदर महिष के साथ रमकर विलामपूर्ण जीवन बिताती रही महिषी को उन दिनों किसी तरह क्षीरसागर मंथन की कथा मालूम हुई। असुरवंश की दयनीय हार के बारे में जाननेवाली महिषी ने फिर देवलोक जाकर देवों को युद्ध के लिए ललकारा।

देवों ने महिषी-वध के लिए जन्म लेनेवाले भूतनाथ मणिकंठ पर शरण लिया। तुरंत देवलोक में पहुँचनेवाले

मणिकंठ की भुठभड़े महिषी से हुई। उन्होंने महिषी की सींग पकडकर उसे जोरे से पृथ्वी पर फेंक डाला। वह गिर पड़ी थी अषुके नदी के किनारे पर। उठने का प्रयत्न करनेवाली महिषी की छाती पर छलाँग करके उसे पीटकर विवश किया। तब वह खून करने लगी। जब महिषी को मालूम हुआ कि मुझे मारकर मृतप्राय बनानेवाला बारह साल का यह बालक साक्षात् हरिहरपुत्र है। तब उसने भगवान का भजन किया। आश्रितवत्सल भगवान ने फ़ौरन पिटाई बंद की। महिषी को धीरे से सहलाया। अचानक महिषी के शरीर से अत्यंत सुंदर एक स्त्री-रूप बाहर आया। उसने उसे स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारी भगवान ने उस प्रार्थना को अस्वीकृत किया। फिर भी सहोदरी भाव से अपने समीप रहने को भगवान ने अनुमति दी। वही है पंचमाता मालिकप्पुरत्तम्मा। अवतार- लक्ष्य को पूरा करनेवाले भगवान पंतलम राजधानी लौटे। उसके पहले महिषी के शरीर को कल्लों से (पत्थरों से) बंद कर संस्कार किया। यही स्थल 'कल्लिटांकुन्न' नाम से जाना जाता है। मणिकंठ भगवान चीते पर बैठकर राजमहल लौटे थे। व्याघ्र रूप में वहाँ पहुँचने वाले साक्षात् देवेंद्र थे। मादा चीते भूतगण थे। कुमार ने कहा चीते है, दूध दुह लें।

राज्ञी की बीमारी पहले ही दूर हो जाने के कारण व्याघ्रदुग्ध की जरूरत नहीं पड़ी। वहाँ पहुँचनेवाले अगस्त्य मुनि से राजा को मालूम हुआ कि कुमार साक्षात् ईश्वर का अवतार है। राजा ने सब की तरफ़ से माफ़ी माँगी, सारे चीते तुरंत अप्रत्यक्ष हुए। अवतारलक्ष्य को पूरा करनेवाले भगवान ने उनकेलिए एक मंदिर का निर्मण करने के लिए राजा से माँगा। नीलिमला (नीलिपहाड) में पूरब की तरफ़ दर्शन के साथ एक मंदिर.... भगवत्प्रतिष्ठा के पास पहुँचने के लिए अठारह सोपान भी समीप हो। उसके समीप ही मालिकापुरत्तम्मा की प्रतिष्ठा। भगवान ने आँख बंद के धनुष में बाँधकर बाण चलाया। जहाँ पर बाण चुभ गया वहीं पर मंदिर निर्माण करने का निर्देश दिया। धर्मशास्ता के विग्रह की प्रतिष्ठा किये कानन-मंदिर में साल में एक बार उत्सव हो। भगवान के निर्देश के अनुसार कार्तिक महीने की प्रथम तिथि को शिला-स्थापना करके मंदिर-निर्माण शुरू हुआ। साक्षात् परशुराम वहाँ पहुँच गये और पुण्य-विग्रह की प्रतिष्ठा की। उस दिन से शबरिमला में कार्तिक महाने की पहली तारिख को मंदिर का प्रवेशद्वार खुलता है और मंडलव्रत (कार्तिक महीने की पहली तारीख से इकतालीस दिन का कठोर व्रतानुष्ठान) भी शुरू होता है और मकरज्योति महोत्सव भी मनाया जाता है। वहाँ पर जो दिव्य ज्योति होती है उसे मकरविलक्क् कहते है। ...अय्यप्पन गीतों में एक दूसरी कथा प्रचार में है। उसे बताने के लिए अब समय नहीं है। बाद में कभी बताऊँगा।

इतना कहकर जब सोलमन ने अपनी बात पूरी की तब पंडाल के बाहर कोई लगातार ताली बजाता है!

सब लोग शरणं पुकारते हुए एकदम बाहर निकले, घना अंधकार शुरू होने के कारण ताली बजानेवाले का पता नहीं लगा पाया। अचानक जब बिजली के बल्ब एक-एक कर जलने लगे हँसता हुआ खड़ा है आत्माराम!

कल्याणी ने साश्चर्य देखती हुई कहा : "ओह! यह कौन है.... आत्माराम सर....?"

आत्माराम ने बताया : "तुम लोगों की तरह मैं भी अय्यप्पन की कथा का श्रवण कर रहा था थोड़ी देर.... पंडाल के बाहर खड़े होकर.... कथा-कथन करने वाले को मैं जानता हूँ... कबाडिया सोलमन.... कोन्नी निवासी....

"क्या ठीक नहीं है....?"

सब लोगों ने एक ही स्वर में जवाब दिया : "हाँ.... हाँ"

आत्माराम ने सोलमन को देखते हुए विस्मयपूर्वक कहा : "सोलमन ने सबको चौंका दिया। क्या सोलमन इस चेहरे को याद करता है? नहीं तो मैं बताऊँगा। चार-पाँच साल पहले कोन्नी में एक हिंदू महासम्मेलन आयोजित हुआ था। वहाँ गुरुजी का भाषण था। सबसे पीछे के उस नारियल के पेड़ से जिसमें साउँडबॉक्स बाँधा था एक नारियल का फल गिरा। उस भाग पर बैठनेवाले घबरा उठे... अचानक बिजली का सप्लाई

रुक गया। फ़ौरन बिजली आ भी गई। जब मैंने टटोलकर देखा तो मेरे पैंट के पॉकट में पर्स नहीं है... उस समय सभा में उपस्थित इस भानुमति ने मुझे वापस देश लौटने को पैसा देकर सहायता की। पुलिस-स्टेशन में शिकायत दी। तब स्टेशन का राइटर मात्यु पणिक्कर ने कहा : कोई संदेह नहीं है... कबाडिया सोलमन ने ही किया है.... उसी दिन पुलिस ने सोलमन को पकड लिया.... पर्स वापस मिला मूल्यवान सारे दस्तावेजों सहित... गँवाया था सिर्फ दो हज़ार रुपये और कार्ड साइज़ के गुरु बाबाजी लैमिनेटेड चित्र। मेरे कहने पर पुलिसवालों ने बिना शारीरिक पीड़ा दिये सोलमन को छोड दिया। वही सोलमन अब मेरे ही सामने.... अय्यप्पा स्वामी की कथा का कथन सुना... कथा-श्रवण करके मैं हर्ष पुलकित हुआ...."

इतना कहने के बाद जब आत्माराम की वाणी रुक गई तब सोलमन तेजी से आकर अश्रुपूर्ण नयनों से आत्माराम के पैरों पर पड़ा।

उस समय मेरी ने अपने सहजात का स्मरण करती हुई साभिमान कहा:"सोलमन अब पुराना सोलमन नहीं है.... उसमें काफ़ी बदलाव आया है... अब कुछ अध्ययन और लेखन से भी जुड़ा हुआ है।... 'एक कबाडिया की आत्मकथा' शीर्षक से एक कृति की रचना पूरा कर दी है... यही नहीं.... वह अब करोडपति है.... लॉटरी मिली है उसे...."

"स्वामी शरणं" आत्माराम ने हाथ ऊपर उठाते हुए शरण मंत्र पुकारा। फिर कहा : "बाद में हम दोनों मिलें.... अकेले में.... कम से कम हम दोनों तो लेखक हैं...."

"मैं ने उतना कोई महत्व नहीं किया है.... रात के समय जब सब लोग आँखें बंद करते हैं तब मैं आँखें खोलता हूँ... तब हाथ सुजलता है और सहजवृत्ति के कारण चोरी करने की प्रबल इच्छा.... जरूरत हो या न हो मैं निकल जाता हूँ.... कुछ न कुछ हथियाये बिना मुझसे रहा नहीं जाता। उस दिन आप के पर्स में रखा एक चित्र... आप ने जिस बाबा का जिक्र किया उस गुरु बाबाजी का चित्र... उसे मैं ने दीवार पर चिपकाया था.... जब मैं उसे देखता हूँ तब बार-बार उसे देखने को दिल करता है।.... इस तरह देखता-देखता एक दिन एक रात में चोरी करने को नहीं निकला.... फिर चोरी करने की गिनती कम होती गयी... जब हाथ खुजलता है तब मैं कागज और कलम उठाकर कुछ लिख डालने लगा। ... इस प्रकार लिख डाली थी... कबाडिया की आत्मकथा...."

इतना कहने के बाद सोलमन की वाणी अचानक रुक गई। तब एक स्त्री की बिलकुल अपरिचित आवाज सुनायी दी। सब लोगों ने पंडाल के बाहर की ओर देखा।

"क्या आपकी आत्मकथा में मैं भी हूँ ?"

सफेद और काले बालों से मिश्रित वेणी को सिर पर बाँध रखी है। उसकी दोनों आँखों के नीचे तीव्र दुख के अमिट काले चिह्न... गले में या कानों में कोई आभूषण नहीं है। माथे पर भरा त्रिपुंड तिलक। लाल मिट्टी के रंग की साडी और ब्लाउज। दुबला शरीर। लेकिन उस चेहरे पर दूसरे किसी में न दीखती तेजस्विता प्रकट थी।

सोलमन ने उस स्त्री से पूछा: "आप कौन थी?"

जवाब पंडाल के भीतर से ही निकला : "भानुमति!" सच्चिदानंद की आवाज थी। उसे पक्का विश्वास था।

आत्माराम ने स्वीकारते हुए कहा : "हाँ... हाँ.... यह महिला मेरे उपन्यास का एक पात्र ही है।"

तब सोलमन की आवाज सुनायी दी। उसकी वाणी में गांभीर्य झलकता था।

"यह कहने में मुझे खेद है... मेरी आत्मकथा में ऐसा एक चरित्र नहीं हैं। क्योंकि जिंदगी सिर्फ कल्पना की सृष्टि नहीं है।"

फिर सोलमन ने अपना गांभीर्य छोडा। गला साफ़ करते हुए कहा : "तुम हो रास्ता। मोड भी तुम्ही हो।"

"स्वामिये शरणमय्यप्पा...."

आत्माराम ने संदर्भोचित शरणमंत्र पुकारा।

(क्रमशः)

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

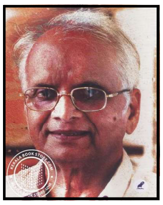

छठवाँ देवपद
उत्तरसन्धि

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

1952 की हाई स्कूल की परीक्षा में मैं उत्तीर्ण हो गया और उसका प्रमाणपत्र अपने प्रिय अध्यापक श्री वेणुक्कुट्टन नायर ने मुझे दिया। आगे की पढ़ाई के लिए मैं आलप्पुषा के सनातन धर्म कॉलेज में भर्ती हो गया और अंपलप्पुषा के चोमाला इल्लम में रहने लगा। तब मुझे वहाँ के सुप्रसिद्ध श्रीकृष्ण स्वामी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मंदिर के तंत्री के परिवार से एवं प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री तकष़ी शिवशंकर पिल्लै से मिलने का अवसर भी उस समय मुझे मिला। ओट्टनतुल्लल नामक केरल की विशिष्ट संगीत-नाट्य-नृत्य समन्वित कला के प्रणेता श्री कुंचन नंपियार ने सर्वप्रथम जिस स्थान पर इस कला का अवतरण किया था उसका भी दर्शन मिला। तंत्री के पुतुमना नामक इल्लम जाने पर श्रीकृष्ण स्वामी का विशिष्ट नैवेद्य खीर मिलता था।

सनातन धर्म कॉलेज का वातावरण बहुत ही शांतिपूर्ण था। वहाँ के प्रधान अध्यापक श्री रामनाथ थे। कुछ दिन के बाद अंपलप्पुषा से कॉलेज तक आना-जाना मुझे बहुत कठिन महसूस होने लगा और दोपहर के भोजन की भी समस्या थी। इसी समय नागरकोइल के किसी गाँव में सौथ ट्रावनकूर हिंदी कॉलेज की स्थापना हुई थी जिसकी प्रबंध समिति में मेरे दोनों मामा अंग थे। मेरे पिताजी के गुरु श्री सत्भवागीश्वर अय्यर कॉलेज के प्रधान अध्यापक थे। अपनी प्रारंभिक दशा होने से कॉलेज अब पक्का नई हो पाया था। फिर भी अपने दोनों मामा एवं अपनी नानी की भी प्रेरणा हुई तो मैं सनातन धर्म कॉलेज से अपने स्थानांतरण प्रमाणपत्र (Transfer Certificate) लेकर नागरकोइल के नये कॉलेज में भर्ती हो गया। शुचींद्र के वट्टप्पिल्ली मठम में मामा-नानी के साथ मेरा रहना अपने माता-पिता को पसंद आया। शुचींद्र से कॉलेज तक की यात्रा आसान तो बिलकुल नहीं था। कॉलेज के पास कोई दुकान नहीं थी; इसलिए दुपहर का भोजन अपने साथ ले जाना था। शाम को पाँच बजे घर लौट आता था। मातृगृह में मैं सुरक्षित था।

प्रधान अध्यापक श्री सव्यवागीश्वर हमें अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर की रचना "ओथल्लो" पढ़ाते थे। श्रेष्ठ अध्यापक के रूप में उनका व्यक्तित्व मुझे बड़ा प्रभावित करता था। उन्हें मुझ से बड़ा प्यार भी था क्योंकि मेरे पिता और मामा के साथ उनकी निकटता जो थी। श्री मीनाट्टूर भास्करन नायर, श्री.बी.सी. बालकृष्णन अब तिरुवनंतपुरम के जवाहर नगर में रहते हैं और श्री भूतलिंग भी पहले तिरुवनंतपुरम में रहते थे। मार्ताण्डम सोमन नायर और पट्टुकल नारायण मेरे सहपाठी थे।

मामा के घर में सबको मेरे प्रति ममता थी। अपनी नानी, मामी-मामा और उनके संतान सभी लोग मेरे लिए भी प्रिय थे। शुचींद्र में तमिल भाषा बोली जाती है। इसलिए घर की रीति-रिवाज़ भी तमिल संस्कृति के अनुसार थी और अब भी यही रीति है। मेरे बड़े मामा श्री वी.पी.परमेश्वर शर्मा (7.7.1902 - 7.6.1970) बड़े ज्योतिषी, प्रामाणिक इतिहासज्ञ, स्थानुमालय मंदिर के तंत्री और दो स्कूलों (ऐरेणीपुरं वासुदेव विलासं हाई स्कूल और शुचींद्रं स्कूल) के प्रबंधकर्ता आदि थे। कभी कभी शाम को वे मुझे साथ लेकर बाहर जाते थे, ऐतिहासिक महत्व के स्थान दिखा देते थे। सुप्रसिद्ध स्थाणुमालय मंदिर की वरिष्टताओं तथा ऐतिहाकिस प्रमाणों (Historical records) के बारे में मुझे परिचित कराते थे वे। डॉ.के.के.पिल्लै अपना शोध-प्रबंध "शुचींद्रं टेम्पिल" तैयार करते समय उनके साथ चर्चा करते थे। यह बात डॉ.पिल्लै ने अपने शोध-प्रबंध में रेखांकित की है। इतिहासज्ञ, कवि, पंडित, अध्यापक, ज्योतिष के जिज्ञासु सार्वजनिक काम करनेवाले - इस प्रकार समाज के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक व्यक्तित्व मेरे मामाजी से मिलने आया करते थे। तमिल भाषा कवि देशीय विनायकं पिल्लै, वी.आर.परमेश्वरन पिल्लै इत्यादि बडे पंडित लोग भी मामाजी के साथ पाण्डित्य पूर्ण चर्चाएँ करते थे। तंत्र-शास्त्र के भी विद्वान थे वे। स्थाणुमालयाधीश के उत्सव के ध्वजारोपण के और ध्वज के नीचे उतारने के अधिकारी थे वे। उसी प्रकार ज्योतिष-संबंधी कोई प्रश्न किसी को हो तो अवश्य, उसका समाधान वे निकाल देते थे। 'आकारसदृशप्रज्ञा' की उक्ति मामा जी के लिए बिलकुल सार्थक है। मुझे अब यह खेद है कि दो साल तक साथ रहकर भी उनके पाण्डित्य का उचित लाभ मैं न उठा सका।

पढ़ाई के बाद अपने गाँव लौट जाने की अनुमति लेने जब मैं मामा जी से मिला तो वे मेरा हाथ पकड कर करीब पच्चीस मिनिट तक अपनी आँखें बंद कर बैठे। फिर उन्होंने यों कहा - "बस जो कुछ मैंने तुझे देना चाहा, सब दे दिया। तेरा मंगल हो।" मैं ने प्रणाम किया। 1970 जून के सातवें तारीख को वे अचानक स्वर्ग सिधार गए। उनकी अंत्योष्टि में मैंने भाग लिया था। इस के दो दिन बाद हमारे चाचा जी श्री नारायण मूत्ततु का अप्रत्याशित निधन हो गया। उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। मामाजी की बेटी के पति थे वे। चाचाजी के निर्दीव शरीर के साथ रातों ही रातों में अकेले मुझे शुचींद्र से हरिप्पाटु तक यात्रा करना पड़ा जो कभी न भूल सकनेवाली बात है।

(क्रमशः)

केरल हिंदी प्रचार सभा के कर्मचारी एवं
छात्र-छात्रायें मिलकर मनाये गये
ओणम त्योहार के विविध दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-09-2023
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI
SEPTEMBER 2023

Vol. No. 60, Issue No.06
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

स्वतंत्रता दिवस पर झंडाभिवादन हो रहा है।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व. मधु बी द्वारा प्रकाशित; राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित तथा प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा संपादित।

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014; Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014 and edited by Prof. D. Thankappan Nair